Visit Dwarkadheeshvastu.com For

FREE Vastu Consultancy, Music, Epics, Devotional Videos
Educational Books, Educational Videos, Wallpapers

****

All Music is also available in CD format. CD Cover can also be print with your Firm Name

****

We also provide this whole Music and Data in PENDRIVE and EXTERNAL HARD DISK.

Contact : Ankit Mishra (+91-8010381364, dwarkadheeshvastu@gmail.com)

Radheyshyam-Durga-Charitra

प्रार्थना

जय जगदीश हरे । जयजय जयजगदीश हरे ।
हे करुणाकर, हे नटनागर ! संकट सकल हरे ॥ जय जय० ॥

करके दया दयामय जिस पर प्रभुवर आप ढरे ।
उसके सब संकट पल भर में आपइ आप टरे ॥ जय जय० ॥

तेरे करुणा के बादल जिस जन पर देव ! झरे ।
शीघ्र जगासे की नाईं सब उसके दुःख जरे ॥ जय० जय ॥

विश्वम्भर ! तेरे चरित्र में जो जन डूबि परे ।
वे ही उबरे इस दुनिया से वे भवसिन्धु तरे ॥ जय जय० ॥

तेरे चरित सिंधु में जाते, जो नर मूढ़ डरे ।
निश्चय ही इस भवसागर में वे सब डूबि मरे ॥ जय जय० ॥

तेरी सुधाभरी वाणी सब जगमें मोद भरे ।
यही विनय है "बनाला" की हे दीनानाथ हरे ॥ जय जय० ॥

—(:०:)—

जयति जयति जगदम्बिके, जय करुणा की खान ।
दो ऐसा वरदान नित, हो जग का कल्यान ॥
शान्ति अनूपम सब लहें, पावें परमानन्द ।
सबके सँग ही दूर हों, मेरे भी दुखद्वन्द ॥

जो अनपायिनि सुख शान्तिमयी, जो परा प्रकृति कहलाती है ।
वह गुप्त शक्ति तू ही तो है, जो प्रकट रूप धर आती है ॥
तूही ब्रह्माणी बन करके, वेदों की रचना करती है ।
तूही लक्ष्मी होकर जग में, सुख सौख्य सम्पदा भरती है ॥
तूही रुद्राणी रूप धार, जन का संहार रचाती है ।
तूही फिर आदि शक्ति बन कर, जड़ जंगम जग उपजाती है ॥
जो बनता तेरा दास जननि, वह जग का स्वामी बनता है ।
जिसपर करुणा-कर रहे तेरा, उसका यश जग में तनता है ॥
तेरे पदपद्मों पर माता, जो अपना ध्यान लगाते हैं ।
वे अनायास इस अवनीपर, चारों ही फल पाजाते हैं ॥
तेरा ही इन्द्रजाल फैला, जिसको हैं लोग जगत कहते ।
सचराचर वस्तु समेत भुवन, सब तुझही में तो रत रहते ॥
जहां कहीं देखो वहीं, तेरी छवि भरपूर ।
तेरा तेज दिखा रहे, चन्द्र सितारे सूर ॥

तू वीणावादिनि वाणी बन, संगीत जगत में भरती है।
निर्जीव प्रकृति को जीवन दे, जीवित भी तूही करती है॥
अद्भुत है कैसी शक्ति भरी, तेरी वीणा के तारों में।
मूर्छित मन के भी भाव रुचिर, खिल उठते हैं झंकारों में॥
भूपर आकर मिटगये सभी, जितने आये थे धनी गुनी।
यदि अमर हुआ तो वही हुआ, जिसने है तेरी तान सुनी॥
मिट गया हस्तिनापुर तब का, पर व्यास अमर हैं आज तलक।
हैं अमर भोज और कालिदास, अज्ञात किसे यह हैं अबतक॥
मां! इसीलिए वह वाणी दे, जो मुझको चिरजीवन देवे।
और तेरी कृपा दिलाकरके, जग को सुख देवे यश लेवे॥
इच्छा है तेरी वाणी से, तेरे ही गुणगण गाऊँ मैं।
तेरे हित ही तेरे जग को, तेरे वे चरित सुनाऊँ मैं॥
मैं अधिक नहीं कुछ चाहरहा, बस यह वर दे मैं ध्यान करूँ।
भाषा में तेरी सप्तशती गाथा का गौरव गान करूँ॥

* गायन *

आओ! माँ वाणी आओ!!

अब देर न और लगाओ। आओ माँ वाणी आओ॥

जग जाँय भाव मन के सारे ऐसी कुछ तान सुनाओ।
अपने पदनख की किरणों से मन सरसिज को विकसाओ॥ आओ०॥

और फिर उस सरसिज से ऐसा पीयूष प्रवाह बहाओ।
सब जग को उसे पिलाकर माँ! उसका दुख शोक मिटाओ॥ आओ०॥

माँ! अपने प्यारे बच्चे को अब और न अधिक भुलाओ।
कुछ तो करुणा इस "ज्वाला" पर हे करुणामयि! कर जाओ॥ आओ०॥

है पुराण विख्यात यक, मार्कण्डेय पुराण ।
देवी के महात्म्य का, जिसमें शुभ आख्यान ॥
मार्कण्डेय ऋषीश ने कही कथा अभिराम ।
सुनकर होते हैं जिसे, जन के पूरण काम ॥

ऋषि बोले श्रोता मुनियों से,--"देवी के चरित सुनाता हूँ ।
सावर्णि सूर्य के सुत क्यों कर, अष्टम मनु हुए बताता हूँ ॥
वह स्वारोचिष मन्वन्तर था, धन धान्य सौख्य सम्पत्ति भरा ।
जब सुरथ नृपति के शासन में, थी सागर तक सम्पूर्ण धरा ॥
निज प्रजावृन्द का पिता सदृश, वे समुचित पालन करते थे ।
खल कामी चोर और तस्कर, सब उनके भय से डरते थे ॥
वे धर्मराज सम न्यायदान, सर्वदा जगत को देते थे ।
सूरज की तरह किरण फैला, अज्ञान तिमिर हर लेते थे ॥
उनके शासन में वसुन्धरा, मन में फूली न समाती थी ।
तीनों लोकों की सुन्दरता, सब उस पर वारी जाती थी ॥
ऋतुयें नियमित क्रम से आकर, उसको सब भाँति सजाती थीं ।
फल फूल अन्न जल आदिक से, शोभा सम्पन्न बनाती थीं ॥
दिनरात सभी खुश रहते थे, रञ्जोगम और मलाल न था ।
कोई भी कहीं पामाल न था, कोई भी कहीं कंगाल न था ॥

रह न सका पर बहुत दिन, नृप का ऐसा हाल ।
उठी भाग्य आकाश में, उनके घटा कराल ॥

कुल दुष्ट राज्य में ऐसे थे, जो उन से जी में जलते थे ।
ज्यों सूर्य उलूकों को खलता, त्यों ही वे उनको खलते थे ॥
अतएव एक दिन उन सब ने, राजा पर धावा बोल दिया ।
मानों कृतघ्नता का सबने, कल्मषमय बन्धन खोल दिया ॥

नृप लड़े, किन्तु विजयी न हुए, ऐसा कुछ विधना वाम हुआ ।
आवृत हो घनी घटाओं से, अन्तर्हित रवि अभिराम हुआ ॥
जग उठी अराजकता फिर से, कुछ ऐसा कुप्रबन्ध छाया ।
अपने भी साथ छोड़ बैठे, चहुँधा नैराश्य उमंड आया ॥
कमज़ोर देखकर राजा को, मंत्रीगण राज्य दबा बैठे ।
उपकार किये थे जो नृप ने, उन सब का ध्यान भुला बैठे ॥
जिस प्रभु के आश्रय में रहकर, वे फूल २ कर बड़े हुए ।
अब उन पर ही वे दुष्ट सभी, तलवार उठाकर खड़े हुए ॥
सच कहा है कहनेवाले ने, जब दुखमय दुर्दिन आते हैं ।
तब क्षण में मित्र शत्रु होकर, जी के गाहक हो जाते हैं ॥
धनबल जनबल से इस प्रकार, सहसा निज को वञ्चित पाकर ।
वैराग्य भरे कह उठे वचन, भूपति यों मन में दुख पाकर ॥

गायन

व्यर्थ तू क्यों भरमाता है ।

कोई कहता है यह पत्नी, और यह बहिन हमारी ।
कोई कहता है यह मेरा, पुत्र, भृत्य, मददगारी ॥
यहीं पर सब रह जाता है ॥ व्यर्थ० ॥

बन्धु हमारे हैं लाखों, बस जब तक अच्छे दिन हैं ।
किन्तु वही फिर जाते हैं जब आजाते दुर्दिन हैं ॥
जगत सब पीठ दिखाता है ॥ व्यर्थ० ॥

इस जग की माया में, पड़कर क्यों तू हँसता है ।
अब भी चेत समय है अब भी, क्यों यों फँसता है ॥
यही "ज्वाला" बतलाता है ॥ व्यर्थ० ॥

सुरथराज के चित्त में, उठा यही विचार।
रहने के लायक नहीं, सचमुच यह संसार॥
यह सोच एक दिन तड़के ही, वैराग्य भाव भर कर मनमें।
लेकर के धनुषबाण कर में, मृगया मिस चले गये बनमें॥
वह बन उस समय प्रफुल्लित हो, अपनी शोभा दिखलाता था।
जिसमें कि एक मुनि का आश्रम, सुख शांति पूर्ण सरसाता था॥
निर्झर झर झर कर कहीं कहीं, विभु की गुणगरिमा गाते थे।
सुमनों से लदकर वृक्ष कहीं, स्वर्गीय सुरभि बगराते थे॥
था सरल शान्ति गति से बहता, शीतल समीर सौरभसाना।
ऐसी बनभूमि देख नृप ने, मनमें अपने बहु सुख माना॥
घूमते विचरते इधर उधर, पहुँचे एक ऋषि के आश्रम पर।
मानों प्यासा यक जा पहुँचे, उत्तम सरिता के उद्गम पर॥
मुनिवर ने प्रेम पुनीत सहित, उनका स्वागत सत्कार किया।
कुछ दिवस वहीं पर रहने का, आग्रह भी भले प्रकार किया॥
आग्रह लख मुनि का वहीं, किया नृपति ने वास।
पर न शान्ति कुछ पा सका, उनका चित्त उदास॥
जितना हटते थे वह जग से, उतना ही खिंचे जा रहे थे।
खुलने के बदले ज्ञानचक्षु, उनके अब मिंचे जा रहे थे॥
निज सचिव सखा भृत्यों से वे, जितना निज चित्त हटाते थे।
उतना ही वे आ आ करके, मनमें घर करते जाते थे॥
जिनके द्वारा उनके प्यारे, सब राज्य पाट का हरण हुआ।
चाहा कितना ही पर न कभी, नृप को उसका विस्मरण हुआ॥
वे कैसे हैं क्या करते हैं, शासन कैसा चलता होगा?
वैसा ही राज्य विटप मेरा, क्या फूल फूल फलता होगा?

जाने मेरे स्वार्थी सेवक, कैसा निज कार्य चलाते हों।
सच्चा नृप-धर्म निभाते हों, अथवा उत्पात मचाते हों॥
हर दम येही विचार उनके, मस्तक में चक्कर खाते थे।
भव-बन्धन सुलझाते जितना, उतना खुद उलझे जाते थे॥
तन जिनसे नाता तोड़ चुका, मनने उनसे ही जोड़ा था।
जग को तो उन्हों नें छोड़ दिया, पर जगने उन्हें न छोड़ा था॥

इसी तरह बीते वहाँ, नृप के दिवस अनेक।
जग की ममता को न वे सके हृदय से फेक॥
घूम रहे थे एक दिन, वे उदास छवि-छीन।
देख पड़ा उनको वहाँ, एक वैश्य अति दीन॥

पूछा नृप ने हे भाई तुम, क्यों घूम रहे हो दीन बने?
हो कौन? कहाँ से आये हो? किस दुख में हो यों लीन घने?
यह सुन वह वैश्य प्रवर बोला, अतिशय अधीर व्याकुल होकर।
"हे महाभाग दुख भोग रहा, मैं इस जग में सब कुछ खोकर॥
है नाम समाधि, वैश्य हूँ मैं, घर से निर्वासन पाया है।
धन के लालच से लड़के ने, इस हालत पर पहुँचाया है॥
पत्नी है और बन्धु भी हैं, पर वे सब बिमुख होगये हैं।
दुख का दुस्समय जग रहा है, सुख के शुभ सुदिन सोगये हैं॥
अफसोस न कुछ भी है मुझको, अपनी इस बदतर हालत पर।
बस दुःख यही है याद मुझे, आरही है उनकी रह रहकर॥
उनके सुख दुख का हाल मुझे, अब कहीं न कुछ मिलपाता है।
इस से तबियत घबराती है, रह रह कर जी अकुलाता है"॥
बोले तब सुरथ-"अरे भाई, यह कैसी ममता करते हो।
कर दिया जिन्हों ने नष्ट तुम्हें, उनकी सुधि में क्यों मरते हो"?

बोला समाधि"—सच है पर यह, ममता न भुलाई जाती है।
उन सब अपनों की याद मुझे, निशि वासर नित्य रुलाती है॥

गाना

क्या जानें ध्यान उनका, कब तक बना रहेगा।
मन मोह में हमारा, कब तक सना रहेगा॥
वह तो करें सितम पर, हम प्यार कर रहे हैं।
ऐसे खिंचाव में दिल, कब तक तना रहेगा॥
"भोला" न दिल से जबतक, यह मोह दूर होगा।
तबतक उन्हीं के ग़म में, यह अनमना रहेगा॥

सुन समाधि के वचन यों, नृप उसको ले साथ।
मुनि ढिंग पहुँचे विनययुत, विनत कियेनिज माथ॥
बोले, "मुनिराज! न जाने क्यों, जितना जग से अकुलाता हूँ।
उतना ही उसके बन्धन में, मैं नितप्रति बँधता जाता हूँ॥
मेरा सेवक मंडल मेरा, जैसा अपकार कर चुका है।
भूला हूँ नहीं आज तक वह, जो अत्याचार कर चुका है॥
उसके कार्यों की बात सोच, छाती जलने लग जाती है।
पर फिर भी उनकी याद मुझे, जब तब आकर अकुलाती है॥
यों ही अपनों से छले गये, यह वैश्य फिर रहे हैं बन में।
अब भी उन सब की याद इन्हें, बेचैन बनाती है मन में॥
दुष्टता ज्ञात है उनकी पर, ममता यह नहीं तजी जाती।
आंखें हैं, पर वे क्या आँखें, जो हैं इसभाँति मुंदी जाती॥
यह मोह और ममता ऐसी, मूर्खों को भली दिखाती है।
विद्वान् मराठली क्यों उस में, भ्रमभ्रम कर भूली जाती है॥

कुछ ज़ोर न जनका चलता है, इस अंधी ममता के आगे ।
जैसे पतङ्ग का ज़ोर न कुछ चलता है दीपक के आगे" ॥

यह सुन मुनिवर ने कहा, सुनो सकल तुम तत्व ।
कहता हूँ क्यों होरहा, ऐसा तुम्हें ममत्व ॥

संसार एक मायामय की, माया का दृश्य दिखाता है ।
जिसमें पड़ ज्ञानवान् नर भी, मूरख सा चक्कर खाता है ॥
है देवि महामाया हरि की, जो सृष्टि जगत की करती है ।
फिर पालन उसका करके वह, अपने ही में लय करती है ॥
संसार उसी की माया में, पड़ कर भूला सा फिरता है ।
मानव उसके ही कारण से, यों मोहकूप में गिरता है ॥
ज्ञानी को अज्ञानी करके, वह माया में लिपटाती है ।
धन जन कलत्र की ममता का, मायामय मार्ग दिखाती है ॥
वह आदि शक्ति है उससे ही, जग के सब बंधन कटते हैं ।
उसके पदनख की किरणों से, तमतोम मोह के फटते हैं ॥
जैसे प्रदीप्त रवि के द्वारा, सब अन्धकार हट जाता है ।
त्योंही माया ममता बन्धन, उसके द्वारा कट जाता है ॥
जबतक न कृपा उसकी होगी, तबतक न दूर माया होगी ।
राजन्! उसकी ही करुणा से, यह सफल मनुज काया होगी"॥

मुनि के ऐसे वचन सुन, हुआ नृपति को ज्ञान ।
कह न सके जो कुछ हुआ, उनको हर्ष महान ॥
उनके हृदयप्रदेश में, फैल गया आलोक ।
दूर उसी क्षण होगये, चिन्ता, माया, शोक ॥

पूछा फिर, हे मुनिराज आप, यह बात मुझे अब बतलावें ।
जिसमें सन्देह चित्त के सब, जो शेष रहे हैं मिटजावें ॥

यह अभी आपने मुझे देव, जिनका यश कह कर बतलाया ।
वे देवी कौन कहाँ की हैं ? कहता जग जिन्हें महामाया ॥
कैसे क्योंकर किस समय यहाँ, उनकी अनुकम्पा होती है ?
सब कहें, मुझे उनका चरित्र, सुनने की इच्छा होती है" ॥
बोले मुनि-"कहता हूँ जैसे, जगमें देवी अवतार हुआ ।
और उनके चारुचरित्रों से, जिस तरह धन्य संसार हुआ ॥
उनकी गुण गरिमा को कैसे, वाणी मेरी गासकती है ?
जो शक्ति न शेष गिरा में है, वह क्या मुझ में आसकती है ?
पर तो भी जो कहपाऊँगा, वह सब मैं तुम्हें सुनाता हूँ ।
होंगी सहायिका वे माता, जिनके चरित्र मैं गाता हूँ ॥
जब जब असुरों की मण्डलियाँ, देवों को खूब सताती हैं ।
तब तब दुष्टों के दलन हेतु, वे धराधाम में आती हैं ॥
उनके आने से असुरों का, दम में निपात हो जाता है ।
सिन्दूर असुर सुन्दरियों के, माथे का नित धो जाता है ॥

गाना

माता ! मेरी गिरा में वह शक्ती प्रदान हो ।
जिससे तेरे चरित्र का परिपूर्ण गान हो ॥
कहकह के जिस चरित्र को सब लोग थक गये ।
कहने में उसके क्या मेरी क़ाबिल जुबान हो ॥
तेरा कहूँगा हाल मैं गर तू सहाय हो ।
तेरा तो गान होगा जो तेरी जुबान हो ॥
मुखमें मेरे तू आके जरा देर बैठ जा ।
देवी दयामयी वही तेरा—मकान हो ॥
"ज्वाला" को आरजू है यही तुझ से रात दिन ।
सरपर हमारे हाथ तेरा भी हर आन हो ॥

सुनो प्रथम जैसे हुआ, देवी का अवतार ।
मधु कैटभ का जिस तरह, हुआ निपट संहार ॥

जलमय जब यह सब जगत हुआ, जलहीन न कोई ठौर रहा ।
और एक शेष को छोड़ यहाँ, कुछ शेष न जगमें और रहा ॥
उस समय योगनिद्रा में हो, भगवान् विष्णु जन-आराधन ।
निश्चिन्त शेष की शैय्या पर, सोगये शांति से रमारमन ॥
उनके कानों के मल से तब, दो दानव मधुकैटभ नामी ।
उत्पन्न हुए अति ही दुर्धर, अति घोर अतुल बल के स्वामी ॥
दोनों ने देखा ब्रह्मा को, हर-नाभिजात कमलासन पर ।
बढ़कर वे दोनों दुष्ट उन्हें, झट हुए मारने को तत्पर ॥
ब्रह्मा को जग का कार्य सौंप, भगवान् इधर तो सोते हैं ।
और उधर दुष्ट ने ब्रह्मा के, वध ही को उद्यत होते हैं ॥
यह विकट समस्या जब देखी, चतुरानन तब अति घबराये ।
और उसी योगनिद्रा का वे, एकान्त ध्यान मनमें लाये ॥
जो विश्वेश्वरी जगद्धात्री, स्थिति लय के दृश्य रचाती है ।
भगवती विष्णु की निद्रा जो, अति तेजमयी कहलाती है ॥
हरि के नयनों में बसी उसी, देवी का सुदृढ़ ध्यान धरकर ।
हरि के उद्बोधन हेतु लगे, संस्तुति करने वे कमलाकर ॥

ध्यान निष्ठ विधि हृदय का, था कुछ ऐसा तौर ।
जगदम्बा को छोड़ कर उठा विचार न और ॥

बोले-"तू स्वाहा स्वधा वषट्, तूही स्वरात्मिका सुधा बनी ।
अक्षरा तथा नित्या तूही, है त्रिविध मातृका सौख्य सनी ॥
तूही तो आधी मात्रा वह, स्थित नित्य वरा वाणी जो है ।
संध्या सावित्री जगज्जननी, सब संज्ञा तुझही को तो है ॥

यह सब तूही धारण करती, तूही तो जगत रचाती है।
तूही पालन भी करती है, तूही संहार मचाती है॥
जगमें तूही तो व्याप रही, तेरी छवि है सबमें छनती।
भव विभव पराभव में तू है, ब्रह्माणी रमा उमा बनती॥
तू महामहिम महिमा वाली, विद्यामाया मेधा स्मृति है।
मोहा देवी तू सुरी बनी, तू आदि प्रकृति निज प्रतिकृति है॥
है कालरात्रि और महारात्रि, और मोहरात्रि दारुण तू है।
श्री ह्रीं ईश्वरी बुद्धि तुही, तू लज्जा पुष्टि तुष्टि तू है॥

तूही तो माता बनी, भ्रान्ति भंजिनी शान्ति।
तूही है कहला रही, कान्ति दायिनी क्षान्ति॥
खड्ग, शूल, भीषण गदा, चक्र शंख और चाप।
बाण भुशुंडी परिघ हैं, तेरे शस्त्र कलाप॥
सौम्या तू है सौम्य से, सुन्दर सुखद स्वरूप।
परा परों से भी परे परमेश्वरी अनूप॥

सच्छक्ति वस्तु जो जगमें है, सबकी तूही तो शक्ति बनी।
किस तरह कही जासकती फिर, तेरी विभूतियाँ कान्ति सनी॥
जो सृष्टि, स्थिति, लयकारी है, परमेश्वर जो कहलाता है।
वह भी तेरी निद्रा के बस, होकर, बेबस होजाता है॥
ये विष्णु तथा मैं और रुद्र, सबने तुझसे तनु पाया है।
फिर तेरे गुण गासकने का, किसमें सामर्थ्य समाया है॥
अब अधिक कहूँ क्या जगदम्बे! बस इतनी बिनती मेरी है.
इतना प्रभाव रख करके भी, रक्षा में अब क्या देरी है॥
इन दोनों दुष्टों दनुजों के, मनमें भरपूर मोह भर दे।
इनका वह ज्ञान, ध्यान, संयम, विद्या, बल, बुद्धि नष्ट करदे॥

सुनो प्रथम जैसे हुआ, देवी का अवतार ।
मधु कैटभ का जिस तरह, हुआ निपट संहार ॥
जलमय जब यह सब जगत हुआ, जलहीन न कोई ठौर रहा ।
और एक शेष को छोड़ यहाँ, कुछ शेष न जगमें और रहा ॥
उस समय योगनिद्रा में हो, भगवान् विष्णु जन-आराधन ।
निश्चिन्त शेष की शैय्या पर, सोगये शांति से रमारमन ॥
उनके कानों के मल से तब, दो दानव मधुकैटभ नामी ।
उत्पन्न हुए अति ही दुर्धर, अति घोर अतुल बल के स्वामी ॥
दोनों ने देखा ब्रह्मा को, हर-नाभिजात कमलासन पर ।
बढ़कर वे दोनों दुष्ट उन्हें, झट हुए मारने को तत्पर ॥
ब्रह्मा को जग का कार्य सौंप, भगवान् इधर तो सोते हैं ।
और उधर दुष्ट वे ब्रह्मा के, वध ही को उद्यत होते हैं ॥
यह विकट समस्या जब देखी, चतुरानन तब अति घबराये ।
और उसी योगनिद्रा का वे, एकान्त ध्यान मनमें लाये ॥
जो विश्वेश्वरी जगद्धात्री, स्थिति लय के दृश्य रचाती है ।
भगवती विष्णु की निद्रा जो, अति तेजमयी कहलाती है ॥
हरि के नयनों में बसी उसी, देवी का सुदृढ़ ध्यान धरकर ।
हरि के उद्बोधन हेतु लगे, संस्तुति करने वे कमलाकर ॥
ध्यान निष्ठ विधि हृदय का, था कुछ ऐसा तौर ।
जगदम्बा को छोड़ कर उठा विचार न और ॥
बोले-"तू स्वाहा स्वधा वषट्, तूही स्वरात्मिका सुधा बनी ।
अक्षरा तथा नित्या तूही, है त्रिविध मातृका सौख्य सनी ॥
तूही तो आधी मात्रा वह, स्थित नित्य जरा वाणी जो है ।
संध्या सावित्री जगज्जननी, सब संज्ञा तुझही को तो है ॥

यह सब तूही धारण करती, तूही तो जगत रचाती है।
तूही पालन भी करती है, तूही संहार मचाती है॥
जगमें तूही तो व्याप रही, तेरी छवि है सबमें छनती।
भव विभव पराभव में तू है, ब्रह्माणी रमा उमा बनती॥
तू महामहिम महिमा वाली, विद्यामाया मेधा स्मृति है।
मोहा देवी तू सुरी बनी, तू आदि प्रकृति निज प्रतिकृति है॥
है कालरात्रि और महारात्रि, और मोहरात्रि दारुण तू है।
श्री ह्रीं ईश्वरी बुद्धि तुही, तू लज्जा पुष्टि तुष्टि तू है॥

तूही तो माता बनी, भ्रान्ति भंजिनी शान्ति।
तूही है कहला रही, कान्ति दायिनी क्षान्ति॥
खड्ग, शूल, भीषण गदा, चक्र शंख और चाप।
बाण भुशुंडी परिघ हैं, तेरे शस्त्र कलाप॥
सौम्या तू है सौम्य से, सुन्दर सुखद स्वरूप।
परा परों से भी परे परमेश्वरी अनूप॥

सच्छक्ति वस्तु जो जगमें है, सबकी तूही तो शक्ति बनी।
किस तरह कही जासकती फिर, तेरी विभूतियाँ कान्ति सनी॥
जो सृष्टि, स्थिति, लयकारी है, परमेश्वर जो कहलाता है।
वह भी तेरी निद्रा के बस, होकर, बेबस होजाता है॥
ये विष्णु तथा मैं और रुद्र, सबने तुझसे तनु पाया है।
फिर तेरे गुण गासकने का, किसमें सामर्थ्य समाया है॥
अब अधिक कहूँ क्या जगदम्बे! बस इतनी बिनती मेरी है.
इतना प्रभाव रख करके भी, रक्षा में अब क्या देरी है॥
इन दोनों दुष्टों दनुजों के, मनमें भरपूर मोह भर दे।
इनका वह ज्ञान, ध्यान, संयम, विद्या, बल, बुद्धि नष्ट करदे॥

और जगत् पिता को जाग्रत कर, समझादे उन को पूर्वापर ।
जिससे उनके द्वारा होवे, दोनों असुरों का वध सत्वर" ॥
दुखभरी विनय ऐसी करके, जब मौन होगये चतुरानन ।
हिलउठा योग निद्रा काभी, यह दुःख देख कर सिंहासन ॥
होकर दयार्द्र वे दयामयी, तजकर मायापति हरि का तन ।
आईं बाहर करुणा करके, चतुरानन को देने दरशन ॥

गायन

सुरगण प्रसन्न होगये उनको निहार के ।
दिन आये देख दुष्ट दलों के सँहार के ॥
अपना पुराना दुःख उन्होंने बिसार के ।
नारे बुलन्द कर दिये जय की पुकार के ॥
बोले कि अब खिजां ने चमन से किया है कूच ।
आये हैं फिर से गुजरे हुए दिन बहार के ॥
अपने दिलों में होगये वे फिर से बाग बाग ।
सोया हुआ नसीब जो जागा सँवार के ॥

आनन्दित हो देवगण हर्षित हुए अपार ।
जयजय की ध्वनि से सभी, गूंज उठा संसार ॥

जिस समय योगनिद्रा हरि की, हरि को तजकर बाहर आईं ।
तब मानों उनके तनमें से, सारा अवसाद खींच लाईं ॥
अब तक माया के वश होकर, जो थे अचेत से पड़े हुये ।
वे हरि माया के हटते ही, चैतन्य रूप हो खड़े हुये ॥
मानों थी अग्निराशि कोई, अबतक तिनकों में दबी हुई ।
पर लपट निकलते ही बाहर, धक धककर वह प्रज्वलित हुई ॥
अथवा मेघों के दल जैसे, घिरते हों शान्त बने नभपर ।
बिजली के बाहर होते ही, वे गरज उठे हों घहराकर ॥

या शान्त क्षीरनिधि से जैसे, बाहर निकला जब रजनीकर ।
खिंचचला प्रबल आकर्षण से, होकर चञ्चल तब रत्नाकर ॥
जो थे अव्यक्तरूप हरि वे, अब पूर्ण रूप से व्यक्त हुए ।
होगये ज्ञात अज्ञात विष्णु, जब माया से संत्यक्त हुये ॥
माया के बाहर होते ही, मायापति की शैय्या डोली ।
उठकर राजिवलोचन हरि ने, दोनों अपनी आंखें खोलीं ॥

आंखें जब खोलीं वहाँ, हरि ने अपनी लाल ।
देखा सन्मुख थे खड़े, दो दानव विकराल ॥

मधु कैटभ ने हरि को देखा, सोये अनन्त की शैय्या पर ।
थे शंख चक्र और गदा पद्म, शोभित उनके चारों शुभ कर ॥
वे दुष्टबली बल के मदमें, उद्धत हो निज विवेक खोकर ।
दौड़े सरोष ब्रह्माजी के, वध करने को उद्यत होकर ॥
हरि ने तब उच्च तीव्र स्वर में, दोनों दुष्टों को ललकारा ।
वे लड़े अनेकों बरसों तक, लेकिन न कोई जीता हारा ॥
आखिर मधुकैटभ दोनों ही, माया से यों आक्रान्त हुए ।
हरि से बोले हम युद्ध देख, तुम से संतुष्ट नितान्त हुए ॥
वर मांगो, यह सुन हरि बोले, "अच्छा प्रसन्न यदि हो मुझपर ।
तो ऐसा करो कि हमसे ही, हो निधन तुम्हारा अब सत्वर" ॥
बोले मधुकैटभ "एवमस्तु ! जिस जगह न कुछ भी जल होगा ।
बस वही हमारा दोनों का, निश्चय ही वध्यस्थल होगा" ॥
सोचा कि यहाँ जल ही जल है, स्थल कहाँ विष्णुजी पावेंगे ।
जब स्थल ही नहीं मिलेगा तो, हम कैसे मारे जावेंगे ॥
पर हरिने अपनी जाँघों को, एक निर्जल सुथल बना करके ।
उन दोनों का सर काट लिया, क्षण भर में चक्र चला करके ॥

महा कालिका यों हुई प्रगट विश्व के बीच ।
मधुकैटभ को भी मिली हरि के हाथों मीच ॥
विधि समेत सब देवता, हो आनन्द विभोर ।
स्तुति माँ की करने लगे, सब अपने कर जोर ॥

गायन

जयमाँ, जय भय हारिणि माँ ।
सुख समृद्धि विस्तारिणि माँ-जय माँ, जय भयहारिणि माँ ॥
जय, मायापति हरिवक्षशायिनि,
जय, विद्युन्मयि, माँ अनपायिनि,
भाग्यविधायिनि, जय वरदायिनि,
लोकोत्तर सुख कारिणि माँ,
जय माँ, जय भयहारिणि माँ ॥
जयमाँ, सौदामिनि द्युतिहासिनि,
जयत्रिदेवि अवसाद विनासिनि,
ज्ञान प्रकासिनि, बुद्धिविकासिनि,
दिव्य ज्योति प्रस्तारिणि माँ,
जय माँ जय भयहारिणि माँ ॥
सबका मोह दूर तू करदे,
दिव्यसुधा वसुधा में भरदे,
कर करुणा "उजाला" पर वरदे,
अयि, दुखशोक विदारिणि माँ,
जय माँ जय भयहारिणि माँ ॥

वही महालक्ष्मी हुई, आगे जैसे आप ।
कहता हूँ सो सब सुनो, मिटें तुम्हारे ताप ॥
राजन् ! अब से पहले भू पर, असुरों का बलशाली स्वामी ।
उत्पन्न हुआ गो द्विज पीड़क, एक निशचर महिषासुर नामी ॥

लड़लड़ कर सकल सुरों को वह, संताप अकारण देता था ।
मानों निज कर्मों से यम को, चुपचाप निमंत्रण देता था ॥
आखिर जब उसने एकबार, इन्द्रासन जाकर छीन लिया ।
और कान्तिवान् देवाधिप को, द्युतिहीन और छविहीन किया ॥
तब सब सुरगण भय से भागे, ब्रह्मा को सबके आगे कर ।
और गये जहाँ थे सृष्टि, स्थिति, लय करनेवाले श्रीहरि हर ॥
फिर बोले हाथ जोड़, "प्रभुवर ! सुरगण पामाल तुम्हारा है ।
महाराज ! आज महिषासुर के, हाथों यह हाल हमारा है ॥
रवि, शशि, पावक, सुरनायक पर, वह विजय प्राप्त कर बैठा है ।
दुर्भाग्य आज मानों आकर, हम सब के सिर पर बैठा है ॥
उसके भय से भगवन् ! हम सब, भूतल पर भागे फिरते हैं ।
हो जाते हैं सब यत्न विफल, जब भाग्य किसी के गिरते हैं ॥
अब ऐसा कुछ करिये जिससे, यह महिषासुर मारा जावे ।
सुर गण सानन्द रहे फिर से, संसार तुम्हारा यश गावे" ॥

हरिहर ने जब यह सुना, महिषासुर का हाल ।
मुख पर झलका क्रोध तब, नेत्र होगये लाल ॥
भुज फड़के, भृकुटी तनी, कोपे जब भगवान ।
हरषी सब सुर मण्डली, निज जय निश्चित जान ॥

उस समय दिखा ऐसा मानों, पृथ्वी नभ, नभ पृथ्वी होगी ।
हरिहर की जलती आंखों से, जिस समय अग्निवर्षा होगी ॥
निकला फिर महातेज उस क्षण, उन दोनों के मुखमण्डल से ।
मानों निकली हों दामिनियाँ, गरजन करते घन के दल से ॥
ब्रह्मादिक के मुख से भी फिर, वैसे ही तेज दीप्त निकले ।
सब मिलकर वहाँ दिखे मानों, सुरज अगनित प्रदीप्त निकले ॥

वह तेज एक में मिल करके, अतिशीघ्र भूधराकार हुआ ।
जिसके प्रकाश से अम्बर तक, प्रज्वलित सभी संसार हुआ ॥
सहमे दिग्पाल दिशायें सब, काँपीं और डोल उठे भूधर ।
गिर पड़ीं सैकड़ों ही मानों, बिजलियाँ असुर दल के ऊपर ॥
उस तेज पुंज ने कुछ क्षण में, नारी का सा आकार लिया ।
यों महिषासुर वध के निमित्त, माता जी ने अवतार लिया ॥
ब्रह्मादिक देवों के तन के, प्रज्वलित तेज से बनी हुई ॥
थी अब महालक्ष्मी त्रिगुणा, वे तड़ित्कान्ति से लसी हुई ॥
उनके शरीर के भिन्न भाग, थे भिन्न तेज से बने हुये ।
हर से मुख, रवि से नखावली, विधि से पग जावक सने हुये ॥
भगवान् विष्णु का तेज हुआ, उनकी अट्ठारह भुजा प्रबल ।
पावक का तेज हुआ आँखें, यम तेज केश की राशि सरल ॥
महालक्ष्मी का हुआ, इस प्रकार निर्माण ।
लौटे उनको देखकर देवों के गत प्राण ॥
बोले सब कर जोड़कर "हे मङ्गलमयि अम्ब ।
महिषासुर संहार में करो, न नेक विलम्ब" ॥
फिर सब देवों ने मिल करके, उनको पैने हथियार दिये ।
जिन से कि महालक्ष्मीजी ने, उन सब के कष्ट निवार दिये ॥
हरने त्रिशूल, माधवने निज, चक्रायुध तत्क्षण दिया उन्हें ।
दिनकर ने अपनी किरणें भर, प्रज्वलित अग्नि सा किया उन्हें ॥
यम ने दे कालपाश उनको, मानों महिषासुर-मरण दिया ।
हिमवंत ने सिंह, सिन्धुपति ने, माता को दिव्याभरण दिया ॥
माथे पर मञ्जु किरीट लसा, कानों में कलकुण्डल चमके ।
और चारु चन्द्र की किरणों से, तनपर मणिहीर पुंज दमके ॥

पग में नूपुर, किंकिणि कटिमें, उर में मोती का हार हुआ ।
इस तरह महालक्ष्मीजी का, मञ्जुल मनोज्ञ शृंगार हुआ ॥
विधि हरिहर इन तीनों ही के, प्रज्वलित तेज से बनी हुई ।
वे दिखीं महालक्ष्मी माता, त्रिगुणा सत् रज तम सनी हुई ॥

* गायन *

वाणी क्या गान करे ।
जग जननी की उस शोभा को जब उनने अस्त्र धरे ॥ वाणी क्या० ॥
उनको विलोक करके "ज्वाला" सुर मंजु प्रसून झरे ॥ वाणी क्या० ॥
दुख भूले मन में सब फूले संकट सकल टरे ॥ वाणी क्या० ॥

—:o:—

उन्हें देख कर उस समय, हुई गिरा भी मौन ।
उनकी छवि वर्णन करे, है ऐसा नर कौन ॥
उस समय कान्ति से सना हुआ, चमका माता का यों आनन ।
मानों निशीथ में निकला हो, अंबर में चन्द्रनिशा का घन ॥
और देवमण्डली पर जिस क्षण, उनकी ममता की दृष्टि हुई ।
उस समय सुधाकर से मानों, स्वर्गीय सुधा की वृष्टि हुई ॥
मेटने सुरों का दुख मा का, वपु जब आनन्द कन्द निकला ।
उस समय दिखा ऐसा मानो, जलनिधि से चारुचन्द निकला ॥
अथवा मेघों के दल में से, निकली हो विद्युन्माला सी ।
सागर से सुधा, धुएँ से ज्यों, निकली हो पावक ज्वालासी ॥
देवों ने माता के तन में, जग जननी का स्वरूप देखा ।
असुरों ने पर माता जी को, भय दायक कालरूप लेखा ॥
सच है जिस जन की जिस ढंग की, जग बीच भावना होती है ।
वैसी ही उसकी निश्चय कर, सब सिद्ध कामना होती है ॥

जिसने माता सा लखा उन्हें, उसपर माता सा प्यार हुआ ।
पर जिसने कालरूप देखा, उसका आखिर संहार हुआ ॥
सजधज कर माया हुई, जब इसभाँति तयार ।
हँसी गर्ज कर हर्ष से, गूंज उठा संसार ॥
उस उनकी एक हँसी ही से, भूतल के भूधर डोल गये ।
डगमगा उठी धरती, दिग्गज, भूभार-वहन में बोल गये ॥
खलभला उठा सागर का जल, जड़ चेतन सारे विकल हुए ।
भयग्रस्त सशंकित से होकर, चौकन्ने खलदल प्रबल हुए ॥
पृथ्वी से नभ के छोरों तक, गूंजा ख मा के हँसने का ।
भय से कर पावेगी वर्णन, क्या वाणी माँ के हँसने का ॥
उस समय प्रलय के दृश्य सभी, उस एक हँसी में दिखे वहाँ ।
असुरों के सब संहार साज, एकत्रित हो दिप उठे वहाँ ॥
दिखपड़े दशन माँ के जैसे, रवि प्रलय काल के मिलकर सब ।
हों चमक रहे निज किरणों से, व्याकुल करने भूतल को अब ॥
अथवा माता की छवि विलोक, अपना सब अहंकार खोकर ।
बैठी हो बिजली आनन में, लज्जा से खंड खंड होकर ॥
माता की दशन प्रभा ऐसी, भक्तों का नित उपकार करे ।
कवि के घर में भी मङ्गल की, वर्षा कर कृपा अपार करे ॥
सुनकर के जिस हँसी को, दहला दानव वृन्द ।
वही मेट दे जगत के, सारे ही दुख दन्द ॥
सुन करके जगज्जननि जी का, तब अट्टहास वह प्रलयङ्कर ।
कुछ शङ्कित कुछ भयभीत हुए, स्तुति करने लगे देव मिलकर ॥
"बस बहुत हुआ हे मातेश्वरि ! यह अट्टहास अब बन्द करो ।
कुछ तो स्थिर हो जावे भूतल, अपनी दशन द्युति मन्द करो ॥

यह घन भेदी रव सुन सुन कर, सुरनर मुनि कांपे जाते हैं ।
विकराल आप का रूप देख, हम सबके तन थर्राते हैं ॥
अब तो तैयार आप होयें, जल्दी रणयात्रा करने को ।
करके दुष्टों का दलन देवि ! सब कष्ट हमारा हरने को ॥

गायन

चलिये, महिषासुर वध करने ।

मातेश्वरि ! असुर अङ्गना का सारा सौभाग्य साज हरने ॥ चलिये० ॥
शर चाप परिघ असि धारणकर असुरों से सन्मुख रण करने ।
मर्दन करके उन दुष्टों का जग का सम्पूर्ण शोक हरने ॥ चलिये० ॥
चलिये अब जगज्जननि चलिये दुख दैन्य दूर सबका करने ।
अपनी करुणा की धार बहा वसुधा में सौख्य सुधा भरने ॥ चलिये० ॥
माँ ! उठो बद्धपरिकर होकर आँधियाला अवनी का हरने ।
अपनी चरितावलि से "ज्वाला" फिर उसको आलोकित करने ॥ चलिये० ॥

—०—

करमें ले हथियार तब, माँ ने किया प्रयाण ।
हँसे देव, रोये निपट, महिषासुर के प्राण ॥

चलने के समय होरहा था, ऐसा जननी का रणगर्जन ।
मानो हों मिलकर गरज रहे, नभ मण्डल में घिर घिरकर घन ॥
सूरज की किरणों में पड़कर, चमचम तलवार चमकती थी ।
वह मानों मेघों के दल में, दमदम दामिनी दमकती थी ॥
केशों में और कुंडलों में, जो रत्न राशि थी लगी हुई ।
वह जुगनू सी दिखपड़ी वहाँ, मानों प्रकाश में पगी हुई ॥
मोती का हार गले में था, जो माता जी के पड़ा हुआ ।
वह बगुला दल सा दीखपड़ा, वर्षा में नभ में उड़ा हुआ ॥

मणियों में झलक झलक कर जो, सूरज की किरण चमकती थी।
सातों रंगो से रंगकर के, वह इन्द्र धनुष सी लगती थी॥
देवी के पैने शस्त्रों से, जो रक्त टपकता जाता था।
वह वीर बहूटी सा गिरकर, आभा अपनी दिखलाता था॥
रणगर्जन सुन जगजननी, का जो राक्षस गण चिल्लाते थे।
वह मानों वर्षा निकट जान, दादुर गण शोर मचाते थे॥
केहरि पर चढ़ रण करने को, जब माता का प्रस्थान हुआ।
तब उन्हें देखकर दुष्टों को, वर्षा का झूठा भान हुआ॥
लेकिन देवों ने लखा, जैसा उनका रूप।
कहता हूँ सो सब सुनो, अद्भुत और अनूप॥
उनको माँ का आनन अमन्द, सरसी सा एक दिखाता था।
जिसमें भ्रूनासादिक सुन्दर, जलबीचि तुल्य छवि पाता था॥
आँखें कमलों सी खिलखिल कर, आनन्द हृदय में भरती थीं।
अथवा दो मछली पानी में, मिलकर क्रीडायें करती थीं॥
था कण्ठ कंबु सा और ओंठ, दो मुक्ताफल से जड़े हुए।
दांतों की पंक्ति दिखी ऐसी, मानो हों मोती पड़े हुए॥
तन पर जो मणिमुक्ताओं की, मालायें चारु झलकती थीं।
वे बनमें पुष्पराशियाँ सी, मानों खिलखिल कर हँसती थीं॥
अथवा जैसे नीलाम्बर में, तारक मण्डली चमकती थीं।
या संध्या के श्यामाञ्चल में, दीपावलियाँ सी जलती थीं॥
तलवार चन्द्रसी दिखी उन्हें, और रक्त दिखा मानों हिमकर-
टपटप टपकाता जाता हो, अमृत की बूँदें भूतल पर॥
माथे की चारु चन्द्रिका को, था चन्द्र-चन्द्रिका सा लेखा।
मायामयि माता के तन में, देवों ने शरद् काल देखा॥

जिसकी थी जो भावना दिखा उसे वह रूप ।
खल को पावस सी दिखी सुर को शरद् स्वरूप ॥

यों देख सवारी माता की, खलभला उठा असुरों का दल ।
जैसे घबराते जीवजन्तु, लगती है जब दावाग्नि प्रबल ॥
दौड़े हथियारों को लेकर, वे राक्षस उनसे रण करने ।
जैसे पतङ्ग का दल कोई, दौड़ा हो दीपक पर मरने ॥
आया देवी जीसे लड़ने, महिषासुर भी सुर-गण घाती ।
हो यथा सूर्य्य की ओर उड़ा, मन में घमराड कर सम्पाती ॥
माता को देख हुई पैदा, आँखों में चकाचौंध भारी ।
देखा, उनके प्रकाश से थी, पूरित नभ तक पृथ्वी सारी ॥
जबजब वे रोष युक्त होकर, अपना कोदराड चढ़ाती थीं ।
तबतब ब्रह्माण्ड मात्र को वे, भयदायिनि देवि कँपाती थीं ॥
माता का भार उठाने में, अहिपति तक डोले जाते थे ।
होहोकर विकल चराचर सब रह रह मन में अकुलाते थे ॥
रणगर्जन सुन जगजननी का, देवों को हर्ष अपार हुआ ।
असुरों के हृदयों में लेकिन, भारी भय का सञ्चार हुआ ॥
फिर सभी दिशाओं में घोषित, माता का जयजयकार हुआ ।
उनका रणवेश देख करके, कृतकृत्य सभी संसार हुआ ॥

अहंकार में डूबकर, होकर मन में क्रुद्ध ।
असुरवृन्द करने लगा, माता जी से युद्ध ॥
उसी तरह दौड़े सभी, करके गर्जन घोर ।
घन समूह जाता यथा,प्रचराड वायु की ओर ॥

असुरों की म्यानों से लाखों, तलवारें चमचम कर चमकीं ।
मानो काले घनमराडल में, दमदम कर दामिनियाँ दमकीं ॥

चामर चिक्षुर उदग्र नामी, निशिचर रणदुर्जय बलवाले ।
आये सेना लेकर अपनी, क्रोधित हो मद में मतवाले ॥
कितने रथ कितने ही घोड़े, कितने गयन्दगण लेलेकर ।
आये लड़ने, पर चलेगये, निज प्राणों की बलि देदेकर ॥
फिर बड़ी बड़ी फौजें लेकर, आया महिषासुर भी लड़ने ।
मानों ज्यों चली प्रबल झंझर,क्रोधित हो गिरिवर से अड़ने॥
तोमर तलवार परशु लेकर, वे सब संग्राम लगे करने ।
निज शस्त्रों के झनझन रव से, सारे भूमण्डल को भरने ॥
असुरों की चमू क्रुद्ध होकर, जो जो हथियार चलाती थीं ।
उनको कौतुक हीमें हँसकर, माँ खण्डित करती जाती थीं॥
सूरज की किरणों सी माता, जिस ओर जहाँ तक जाती थीं ।
तिमिरावलि सी उस ओर वहीं, खलमण्डलियाँ कट जाती थीं ॥

होते थे यह देखकर, सुरगण मुदित अपार ।
बार बार थे कररहे, देवी का जयकार ॥

पहले माता ने दुष्टों के, खण्डित सारे हथियार किये ।
फिर उन पर क्रोधित हो अपने, शस्त्रों के तीखे वार किये ॥
घुस पड़ा शत्रुदल में ऐसे, उनका केहरि रणगर्जन कर ।
सूखे जंगल में लगती है, जैसे दावाग्नि प्रबल झर झर ॥
फिर एक सांस से माता के, लाखों ही गण उत्पन्न हुये ।
उनको विलोक कर दानवगण, शंकित हो मरणासन्न हुये ॥
कोई फरसा कोई तेगा, कोई तलवार किर्च लेकर ।
देवी को लगा तुष्ट करने, उन असुरों की बलियाँ देकर ॥
जो उनके सन्मुख पड़ा उसे, निज तीक्ष्ण तेग से काट दिया ।
असुरों की लाखों लाशों से, सब ने समरांगण पाट दिया ॥

यह देख देवगण हर्षित हो, मनमें फूले न समाते थे।
घंटा मृदंग और शंख बजा, माँ की विरुदावलि गाते थे॥
दुष्टों के कटने से उनकी, सब विपदा कटती जाती थी।
इनका शोणित बहता, उनकी सुख की पौ फटती जाती थी॥
असुरों के तन से शोणित की, धारा ज्यों बहती आती थी।
त्यों देवों की आशा लतिका, निश्चय हरियाती जाती थी॥

परम विषैले बाण की, बरसा कर खरधार।
माँ ने लाखों को दिया, यम के घाट उतार॥
बँधकर माँ के पाश में, कितने ही रणशूर।
प्राण त्याग करके गये, मर्त्य-लोक से दूर॥

कितने ही गदाघात पाकर, भूपर अचेत थे पड़े हुए।
रहरह कर वमन कर रहे थे, कितने ही शोणित खड़े हुए॥
बाणों की मारों से कितने, निर्जीव पड़े थे उस रण में।
कोई था कहीं कराह रहा, वीभत्स पूर्ण समरांगण में॥
कितने ही अरि-योद्धाओं के, सिर थे निजधड़ से कटे हुए।
पर युद्ध-भूमि में लड़ने को, उनके कबन्ध थे डटे हुये॥
वे तलवारें लेलेकर के, माता से रण में भिड़ते थे।
पर उनके शस्त्रों से कटकर, तत्क्षण भूतल पर गिरते थे॥
कितने ही नेत्र विहीन हुए, कितनों के हाथ पैर टूटे।
माता के गदा प्रहारों से, कितनों ही के मस्तक फूटे॥
असुरों की सारी सेना का, माँ ने संहार किया ऐसे।
पलभर में जला खाक करती, सूखे तृण को पावक जैसे॥
या पवन बादलों के दल को, है छिन्नभिन्न करता जैसे।
माता ने दुष्ट दानवों का, पलभर में नाश किया वैसे॥

इधर होरहा था यहाँ, देवों का दुख न्यून ।
उधर बरसते थे वहाँ, माँ पर मंजु प्रसून ॥
दानव दल का मिट गया, सभी हर्ष आराम ।
महिषासुर की सैन्य पर, हुआ विधाता वाम ॥
अब आगे जैसे हुए, देवीजी के काम ।
कहता हूँ सो सब तुम्हें, हे राजन् मतिधाम ॥
महिषासुर की सैन्य का, सेनापति विकराल ।
चिक्षुर नामी एक था, राक्षस बड़ा विशाल ॥
निज सेना का जब लखा, उसने यह बे हाल ।
आया होकर क्रुद्ध तब, करने युद्ध कराल ॥
फिर उसने जगज्जननि जी पर, की बाणों की वर्षा ऐसी ।
करता सुमेरुगिरि पर बादल, जलधारों की वर्षा जैसी ॥
पर माता ने उन बाणों को, हँसकर क्षण भरमें काट दिया ।
और असुर सैन्य की लाशों से, उस समरांगण को पाट दिया ॥
चिक्षुर का धनुष और रथ भी, टूटा माता के बाणों से ।
सारथी और स्यन्दन दोनों, कट गये वहाँ उन बाणों से ॥
यह देख दुष्ट वह निजकर में, लेकर तलवार चला ऐसे ।
त्रेता में रघुपति से लड़ने, था लङ्कानाथ चला जैसे ॥
पहले तो केहरि पर उसने, अपने आयुध का वार किया ।
फिर वामबाहु पर माता के, चिक्षुर ने खड्ग प्रहार किया ॥
पर उलटा उसका खड्ग गिरा, भूतल पर खंड खंड होकर ।
टुकड़े टुकड़े होजाता है, पत्थर पर काँच यथा गिरकर ॥
तब क्रोधित हो उस दानव ने, एक शूल चलाई माता पे ।
नभ में उड़कर, धक धककर वह, उल्का सी धाई माता पे ॥

माता ने उसे राह ही में, खण्डित कितनी ही वार किया ।
और रोषयुक्त हो उस खल को, चट यम के घाट उतार दिया ॥
सेनापति का देखकर, यों रण में अवसान ।
असुर-सैन्य में मचगया, हाहाकार महान ॥
चामर नामी दैत्य एक, हो गज पर आरूढ़ ।
आया गिरने देवि की, क्रोधवन्हि में मूढ़ ॥
छोड़ी एक शक्ति प्रकम्पित कर, जगको अपनी हुँकारों से ।
माता ने उसे काट डाला, बाणों की खरतर धारों से ॥
फिर माँ का सिंह तड़प करके, जगके मस्तक पर टूट पड़ा ।
ऊँचे पर्वत की माला पर, हो वज्रायुध ज्यों टूट पड़ा ॥
अपने पञ्जे का फिर उसने, चामर पर तीखा वार किया ।
और एक तमाचे ही में बस, उस पामर का संहार किया ॥
आया उदग्र पर उसको भी, देवी ने वहीं निपात किया ।
मानों ससैन्य महिषासुर पर, माताजी ने पविपात किया ॥
वास्कल, अंधक, विडाल, उद्धत, दुर्मर्य, कराल, हनु और दुर्धर ।
आये माँ लक्ष्मी से लड़ने, कितने ही शूरवीर निश्चिर ॥
पर माँ ने शस्त्र प्रहारों से, उनको तत्क्षण ही मार दिया ।
और करके दया दयामयि ने, भूतल का संकट टार दिया ॥
निज सेना का जब लखा, महिषासुर ने नास ।
आया तत्क्षण क्रोध से, देवी जी के पास ॥
उस मायावी ने माया से, भैंसे का रूप कराल किया ।
और अपने ऊँचे नादों से; भूमण्डल को बेहाल किया ॥
जगजननी जी की सेवा में, जिस ओर जहाँ वह जाता है ।
उस ओर वहीं उसके मारे, कुहराम घोर मच जाता है ॥

कितनों को रौंद रौंद करके, टापों से प्राण विहीन किया ।
कितनों ही को निज श्वासों से, दानव ने संज्ञाहीन किया ॥
उसका ऊँचा निनाद सुनकर, माता के गण भयभीत हुए ।
शंकित होकर सुरगण सारे, भय से विवर्ण और पीत हुए ॥
इस ओर जननि की सेना का, था यों भीषण संहार मचा ।
उस ओर देवताओं में भी, दुख से अति हाहाकार मचा ॥
ज्यों ज्यों महिषासुर के सैनिक, हर्षित होकर चिल्लाते थे ।
त्यों ही त्यों कर भविष्यचिन्ता, सुरगण सब सूखे जाते थे ॥

महिषासुर धाया प्रबल, माता के प्रति दुष्ट।
यह विलोक माता हुई, अपने मनमें रुष्ट ॥

उस महाबली महिषासुर के, चलने से काँपी सकल मही ।
मानों समूल सबको ढाने, झर झर कर वायु प्रचण्ड बही ॥
अपने खुर से भूतल को जब, वह दुष्ट खोदता जाता था ।
उस समय धूल से अम्बर तक, संसार सभी ढक जाता था ॥
उसके सींगों की मारों से, कितने ही भूधर चूर्ण हुए ।
फट फट कर बादल कितने ही, बहु छिद्रों से परिपूर्ण हुए ॥
उड़ गये अनेकों ही तरुवर, उसके श्वासों की मारों से ।
और सागर भी खलभला उठा, दानव के पुच्छ प्रहारों से ॥
उसके चलने से कँप कँपकर, कितने ही भूमिखण्ड दरके ।
पर मङ्गलमयि माताजी के, मङ्गलमय वाम नैन फरके ॥
यह हाल देख महिषासुर का, असुरों में हर्ष निनाद हुआ ।
उनकी जय की शङ्का करके, देवों में किन्तु विषाद हुआ ॥

वे असुरों की जीत से, हो मनमें भयभीत ।
देवी की स्तुति के सभी, गाने लगे सुगीत ॥

गायन

माँ ! क्यों विलम्ब करती हो अब ।
जल्दी महिषासुर-मरण करो निर्जीव हुए जाते हम सब ॥ माँ क्यों० ॥
इसके इन पुच्छ प्रहारों से,
सींगों टापों की मारों से,
माँ ! हम सब काँप रहे थर थर इसकी प्रचण्ड हुंकारों से ।
क्या जाने इसका वध करके हम सबको सुख दोगी तुम कब ॥ माँ क्या० ॥
यह हाल रहा गर देर तलक,
तो निश्चय ही यह जमींफलक,
सब चूर चूर होजावेगा बस देवि मारते एक पलक ।
फिर क्या वध करने से होगा हम सब ही मरजावेंगे जब ॥ माँ क्यों० ॥
अब भी हम में हैं प्राण शेष,
आओ अब भी हर लो क्लेश,
माँ जल्दी रणचण्डी बनकर दिखलादो अपना रौद्रवेश ।
अन्यथा न कुछ होपावेगा "बंशाला" अवसर बीतेगा जब ॥ माँ क्यों० ॥

—०—

सुनकर देवों की विनय, मङ्गलमयि जगदंब ।
महिषासुर को मारने उठीं, शीघ्र अविलम्ब ॥
माता ने पाशबद्ध कर जब, उस खल पर शस्त्र प्रहार किया ।
तब उसने अंग बढ़ा करके, केहरि का सा आकार लिया ॥
यह देख मारने को उसको, माता जब चली रणांगण में ।
तब पुरुषरूप होकर आया, वह करने युद्ध उसी क्षण में ॥
माता ने क्रोधित हो मनमें, उस पर तलवार चलाई जब ।
बनगया पुरुष से हाथी सा, वह महिषासुर मायावी तब ॥
फिर पकड़ सूंड़ से केहरि को,उस खलने तत्क्षण मूक किया ।
पर माँ ने खड्ग चलाकर के, सूंड़ को वहीं दो टूक किया ॥

यह देख दुष्ट ने अपना फिर, वह पहले का आकार किया ।
और माँ की सेना पर फिर से अपने सींगों का वार किया ॥
फिर से भूतल सब काँप उठा, आया जब वह रणगर्जन कर ।
सुरनर मुनि उसका रूप देख, फिर से सब कांप उठे थर थर ॥
आलस से मलिन हुए मन को, उत्साह विमल जल से धोकर ।
मदपान प्रयुक्त किया माँ ने, अन्तर में अति क्रोधित होकर ॥
उस समय नशे में माता के, आरक्त नैन ऐसे चमके ।
जल करके लाललाल होकर, दो अंगारे जैसे दमके ॥
मानो परिपीड़ित देवों की, दुख-रजनी का जब नाश हुआ ।
प्राची से अरुणप्रभा वाले, सूरज का तभी विकाश हुआ ॥
उनको विलोक कर देवों के, मनरूपी सरसिज फूल गये ।
और वे अपना पिछला सारा, दुख शोक आदि सब भूल गये ॥
देवी की आंखें देखदेख, दानव सेना कम्पित हो उट्ठे ।
असुरों की सुन्दरियों के मन, संताप-संकुलित हो उट्ठे ॥
वे आंखें जो सुरमण्डल में, मङ्गल की वर्षा करती थीं ।
असुरों को भय से कम्पित कर, जो शोक जगत का हरती थीं ॥
वे आंखें जिन्हें देख कोई, हर्षित कोई भयभीत हुआ ।
उनका सुचारु वर्णन करके, "ज्वाला" भी आज पुनीत हुआ ॥

माता फिर गरजी वहाँ, कर भीषण हुंकार ।
शेष हिले, भूधर डिगे, काँप उठा संसार ॥

महिषासुर के भी नयन युगल, होउठे रोष से मतवाले ।
सींगों की चोटों से उसने, गिर पर्वत बहु उखाड़ डाले ॥
फिर उन्हें फेंकने को माँ पर, उसने प्रयत्न भरपूर किया ।
पर माँ ने उन्हें राहही में, बाणों से चकना चूर किया ॥

फिर बोली, "मूढ़ ! गरजले तू, तब तक मद्पान करूँगी मैं ।
और तब अपने इन हाथों से, तुझको निष्प्राण करूँगी मैं ॥
अबतक तो तू खुश होता था, अब सुरमण्डल खुश होवेगा ।
वैसे ही फल वह पावेगा, जो जैसे बीजे बोवेगा ॥
यह कहकर मद्यपान करके, मा कूदपड़ी महिषासुर पै ।
मानों गिरपड़ी कहीं बिजली, नन्हे से निर्बल अंकुर पै ॥
यह देख मनुज का रूप बना, महिषासुर दुष्ट लड़ा ऐसे ।
बुझने के पहले उठती है, उज्ज्वल हो दीपशिखा जैसे ॥
लड़ने फिर माता से रण में, दानव गण भी असंख्य निकले ।
मानों चीटों की देहों में, मरने के समय पंख निकले ॥
लेकर उन को साथ में, महिषासुर बलवान ।
मोह छोड़ निज प्राण का, लड़ा घोर घमसान ॥
जिस ओर हाथ उसका चलता, उस ओर देवदल था गिरता ।
है मसल सही, 'जो मरता है, वह फिर क्या भला नहीं करता' ॥
उस समय जान रख हाथों पर, वह दुष्ट लड़ा माता जी से ।
पर्वत की तरह देह फैला, होक्रुद्ध अड़ा माता जी से ॥
रणमत्त देख करके उसको, सुरगण सब सहमे जाते थे ।
उसका जल्दी वध करने की, माता को याद दिलाते थे ॥
भगवती भला कब चुप रहतीं, भक्तों का भीतिभाव सुन कर ।
माता कब मौन बनी रहतीं, बच्चों का आर्त नाद सुनकर ॥
जिनकी वे हैं जो उनके हैं, उनका सारा दुख हरने को ।
छोड़ी माता ने कठिन शूल, महिषासुर का वध करने को ॥
वह शूल गिरा क्या, दानवपर मानों बिजली गिरपड़ी वहाँ ।
आगी के आगे बचे भला, ऐसी पतङ्ग में शक्ति कहाँ ॥

उसके गिरने से देवों के, दुख के पहाड़ भी चूर्ण हुए।
और जननी के जयनादों से, कोने कोने परिपूर्ण हुए॥
घण्टा मृदङ्ग और शंख बजा, देवों के दल मनमें हरषे।
उनके चरित्र को देख देख, नभ से स्वर्गीय फूल बरषे॥
फिर वे सब अपने सभी, दुःख शोक को भूल।
मा का स्तव करने लगे, सुख कर मङ्गल मूल॥

गायन

संकट हम सबका टार दिया, खल का वध करके माता ने।
इसका पृथ्वी का भार किया, दारुण दुख हरके माता ने॥
हम सबके जीवन की नैया, क्या जानें कहाँ कहाँ बहती।
पर खेकर उसको पार किया, नाविक होकर के माता ने॥
इस दुख में घुल घुल कर एक दिन, हम उठ जाते इस दुनियाँ से।
पर हम को शीघ्र उबार लिया, बाँहों को धरके माता ने॥
इस अँधियारी में अन्धे हो, सब भ्रमे भ्रमे से फिरते थे।
पर रजनी का संहार किया, सब सारा हरके माता ने॥
क्या जानें हम अधीर होकर, कब के मरमिट जाते "ज्वाला"।
लेकिन बच्चे सा प्यार किया, सर पर कर धरके माता ने॥

—०—

प्रार्थना

जय करुणाकर, जय विश्वम्भर ।

जय प्रभु जगती के सञ्चालक, जय मायापति जय महिमाकर ॥ जय०

जब जग के जालों में पड़ कर, अकुलाता नर है घबरा कर ।

तब उसको लेते उबार तुम, करुणा करके हे करुणाकर ॥ जय०

जब जब साधु कष्ट पाते हैं, बढ़ते हैं जब अधम निशाचर ।

तब तब नाना रूप धार कर, आते हो तुम नाथ धरा पर ॥ जय०

देखो आज देशवासी सब, सोते हैं सुधि बुधि बिसरा कर ।

आओ उन्हें उठाओ आकर, त्रिगुणातीत हे प्रभु त्रिगुणाकर ॥ जय०

फिर से यह भारत पहले सा, होजावे स्वर्ग सा शोभाकर ।

'बत्राला' यह पुनीत हो फिर से, विमल भाव की ज्योति जगाकर ॥ जय०

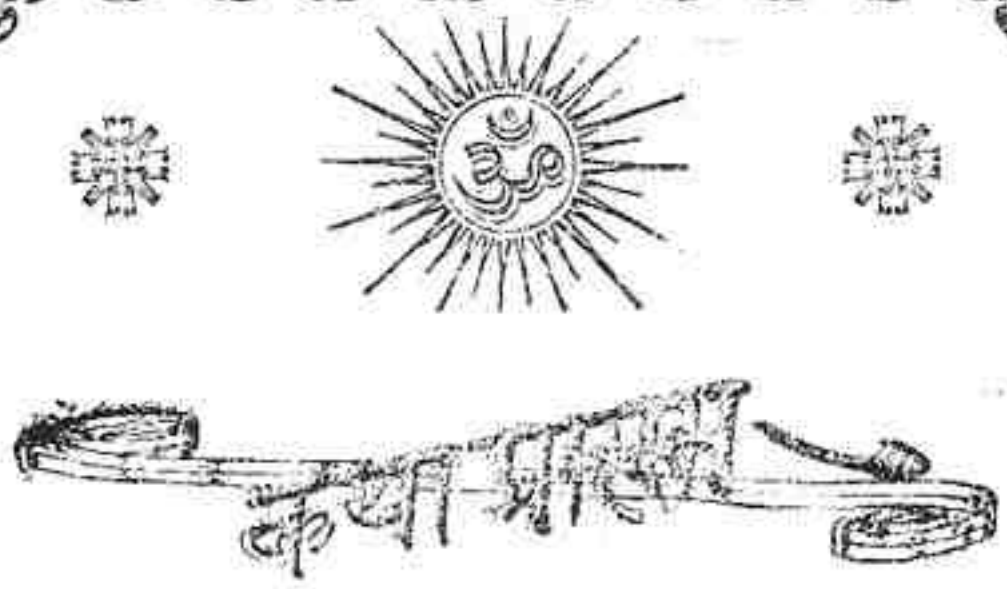

माँ ने जब रण में किया, महिषासुर संहार।
धरा धाम से मिट गया, घना पाप का भार॥
दानव के मरने से जग में, परिशान्त सभी उत्पात हुआ।
दुख की दुनिशा व्यतीत हुई, सुखका सुखद प्रभात हुआ॥
अर्थात नाश से दुष्टों के, देवों का दुख सब दूर हुआ।
असुरों के मन में भरा हुआ, दुर्दम्य दर्प सब चूर हुआ॥
अन्याय हटा, अविवेक घटा, फिर से जगमें प्रशान्ति हुई।
निस्तेज मुखों पर देवों के, फिर पहले जैसी कान्ति हुई॥
अबतक जो दुख में डूबे थे, वे सुख में होने लगे सभी।
पर जो खुश होते थे पहले, वे दुख में रोने लगे सभी॥
सच है, पहले यदि सुख पाया, तो पीछे नर दुख पायेगा।
और पहले जो, दुख देखेगा, वह पीछे हर्ष मनायेगा॥
दुनिया में सुख दुख दोनों ही, क्रम क्रम से आते जाते हैं।
हैं धीर वही जो दुख में भी, मन को न अधीर बनाते हैं॥
यदि सुख है अटल न पृथ्वी पर, तो दुख भी अटल नहीं होगा।
ऐसा विचार कर के मन में, पण्डित जन विकल नहीं होगा॥
जो विपदा आज सामने है, वह कल निश्चय कटजाती है।
घन घटा टोप हट जाने पर, रविच्छटा प्रकट हो आती है॥

मतलब यही कि अन्त में, दीर्घ काल के बाद ।
सुरसमूह का मिटगया, जब सम्पूर्ण विषाद ॥
तब वे सब निज चित्त में, होकर मुदित अपार ।
एक साथ करने लगे, माँ का जय जयकार ॥
वे बोले, "माँ ! किस वाणी से, हम तेरे गुण का गान करें ।
ढीले तारों में कैसे हम, तेरे स्वर की झंकार भरें ॥
हम सबके अतुल तेज से ही, माता तेरा निर्माण हुआ ।
तुझ को विलोकि जी उठे देव, और दानवदल निष्प्राण हुआ ॥
तेरी महिमा गासकने की, माँ ! किसमें शक्ति समाई है ।
वाणी भी थककर मौन हुई, अहिपति की मति बौराई है ॥
दरिद्र पापियों के घरमें, सज्जनों के घर लक्ष्मी होकर ।
रहती है शुद्ध हृदय में तू, माता हरदम बुद्धी होकर ॥
सत्व, रज, तम तीनों गुणवाली, तू आदि प्रकृति कहलाती है ।
हम सब क्या सारी दुनिया ही, तुझ में निज आश्रय पाती है ॥
तू लक्ष्मी, तूही गौरी है, तूही है माता सरस्वती ।
तेरा यश गाने की हम में, सामर्थ्य कहाँ है वेदवती ? ॥
जिनको कहने में थक काके, श्रीशेष स्वयं थे अकुलाये ।
क्या शक्ति हमारी वाणी में, जो उन चरितों को कह पायें ॥
तेरे गुण के गान का, है प्रयत्न सब व्यर्थ ।
शशि को छूने का कहाँ, बौने में सामर्थ ॥
क्या ताकत है एक बौने की, जो चारु चन्द्र को छूपाये ।
क्या ताकत देव-वृन्द की है, जो वह तेरी महिमा गाये ॥
हमपर क्या दुष्टों पर भी तो, माता तू करुणा करती है ।
उन सब पर भी तो मङ्गलमयि, तू नित मङ्गल आचरती है ॥

इच्छा करती तो पल भर में, महिषासुर मार दिया जाता ।
और बैठे बैठे ही संकट, हम सब का टार दिया जाता ॥
पर माँ तूने उस दानव को, सन्मुख रण में लड़कर मारा ।
यों सद्गति देकर के उसको, क्या तूने उसे नहीं तारा ?॥
इस दुनिया में नर वही एक, बस दयावान् कहलाता है ।
जो शत्रु मित्र पर हो समान, निज दयाभाव दिखलाता है ॥
वह दया नहीं कहलाती है, वह स्वार्थभाव कहलाता है ।
पाते हैं जिसे मित्र, लेकिन अरिदल वंचित रहजाता है ॥
माँ ! सचमुच ही धन्य है, ऐसी सुन्दर युक्ति ।
हम सबका संकट हटा, मिली दुष्ट को मुक्ति ॥
महिषासुर का वध करके माँ ! तूने यह सिद्ध किया भारी ।
वह कौन काम है इस जग में, कर सके न जिसे आर्य-नारी ॥
वह चाहे तो एक पलभर में, जग उथल पुथल कर सकती है ।
निश्चल को सचल बना करके, चल को निश्चल कर सकती है ॥
भारत का नारी मण्डल अब, निज गौरव भूला जाता है ।
तेरी सन्तति होकर के माँ, वह अबलादल कहलाता है ॥
भारत की बहिनों ! माताओ, यदि अबभी आप जाग जायें ।
तो निश्चय ही हमलोगों के, सारे दुखदैन्य भाग जायें ॥
फिर से यह भारत पहले के, भारत सा गौरववान् बने ।
बलवान् बने, धनवान् बने, गुणवान् बने विद्वान् बने ॥
बहिनो ! तुम चाहोतो अब भी, आसकता है फिर वक्त वही ।
दिखलादो तुममें अबभी है, अपनी माता का रक्त वही ॥
उठपड़ो देखलें सब कोई, भारत की कैसी नारी हैं ।
दुर्गा यदि नहीं, तो दुर्गा की, अबभी कन्यायें प्यारी हैं ॥

उनने महिषासुर मारा था, तो यह मोहासुर मारेंगी।
दारिद्र्य, दैन्य, दुख का दुर्दल, दल दल कर सकल संहारेंगी ॥

गाना

ओ भारत की माताओ ! तुम आज अगर जग जाओ।
तो दीन हीन भारत को, तुम फिर से स्वर्ग बनाओ ॥ ओ० ॥
सोये हों उन्हें जगादो, । जागे हों उन्हें उठादो।
सबको सुमार्ग दिखलादो, कर्त्तव्य उन्हें बतलादो ॥
करके करुणा इस सब पर, निर्बल को सबल बनाओ ॥ ओ० ॥
हों रामकृष्ण और हलधर, अर्जुन से बालक घर घर।
भारत का पदवंदन कर, फिर से कृतार्थ हो जग भर ॥
माताओ तुम मातायें, अपने को अगर बनाओ ॥ ओ० ॥
अज्ञान निशा हट जावे, माया बन्धन कट जावे।
दुख का बादल फट जावे, सुख का सूरज प्रगटावे ॥
"उजाला" गर आलस तज कर, तुम कर्मभूमि में आओ ॥ ओ० ॥

—०—

करके माता देवि की, संस्तुति बारंबार।
लगे पूजने देव गण, उनको सभी प्रकार ॥
चन्दन अक्षत आदि से, कर उनका सत्कार।
सादर बरसाने लगे, फिर फूलों की धार ॥

बोलीं प्रसन्न होकर देवी, बोलो मैं क्या तुमको वर दूँ।
हो और तुम्हारा कार्य कोई, तो उसको भी तत्क्षण कर दूँ ॥
अपने प्राणों से भी बढ़कर, तुम सुरगण मुझको प्यारे हो।
मैं हूँ तुम सबका अंश और, तुम मेरे अंश दुलारे हो" ॥

बोले तब देव, "धन्य हो माँ, यदि माँ न स्वयं अपनायेगी ।
तो उसके पुत्रों की टोली, किस ओर कहो फिर जायेगी ॥
बच्चा न अगर कल पायेगा, तो माता कब कल पायेगी ।
उसका रोदन सुन सुन करके, वह खुद ही दौड़ी आयेगी ॥
हम सबके तो दुख दूर हुये, पर अब यह देवि ! किया कीजे ।
सज्जन और साधु भक्त जो हों, उनको आनन्द दियाकीजे ॥
निर्बल जनपर अन्याय कभी, बलवान् न करने पावे माँ !
उसके सब सङ्कट दूर करो, जो तुम्हें भक्ति से ध्यावे माँ !
जो भक्त तुम्हारे हों उन पर, माँ ! हाथ तुम्हारा तना रहे ।
हों जहाँ कहीं उन पर तेरा, मङ्गलमय साया बना रहे" ॥

सुनी कथन सुरवृन्द की, माता ने धर ध्यान ।
एवमस्तु कह कर हुई, वे फिर अन्तर्ध्यान ॥

तू गई, किन्तु तब से घर घर, माँ ! तेरी चर्चा होती है ।
तेरी पूजा, तेरा वन्दन, तेरी नित अर्च्चा होती है ॥
जब जब हम सङ्कट में पड़कर, माँ ! तुझे भक्ति से ध्याते हैं ।
तब तब तू करुणा करती है, सङ्कट सारे मिट जाते हैं ॥
कितनी ही बार विलोकी है, हमने तेरी सुन्दर झाँकी ।
कितनी ही बार यहाँ छिटकी, माँ ! तेरी छवि मनहर बाँकी ॥
पहले जब दिल्ली का शासक, था दुष्ट अलाउद्दीन हुआ ।
जिसके प्रताप के आगे था, सारा मेवाड़ मलीन हुआ ॥
तब जिसने लज्जा रक्खी माँ ! भारत के नारीमण्डल की ।
वह सती पद्मिनी भी कोई, दासी थी तेरे ही दल की ॥
फिर गढ़मण्डला लेने की, जब अकबर ने मन में ठानी ।
तब माँ दुर्गा ! तू प्रकट हुई, हो गोड़ों की दुर्गारानी ॥

झाँसी में लक्ष्मी बाई बन, तूने ही युद्ध मचाया था।
मीराबाई बनकर माता ! तूने हरिगान सुनाया था॥
देख देख कर इसतरह, तेरे सुन्दर वेश।
आनन्दित मन में हुआ, सारा भारत देश॥
पर क्या जानें अब क्यों हमको, बरसों से भूल गयी है माँ।
क्या जानें अपने बच्चों से अब क्यों प्रतिकूल हुई है माँ॥
अबभी प्रति वत्सर तेरा ही, हम सब आराधन करते हैं।
तुझको प्रसन्न करने को माँ, अबभी सब साधन करते हैं॥
नवरात्र यहाँ आता जैसे, तैसे समाप्त होजाता है।
अब कभी न वह हमको तेरी, सच्ची झाँकी दिखलाता है॥
माता ! क्या नहीं देखती तू, हालत अपनी कन्याओं की।
भारत के विधवामण्डल की, हिन्दूकुल की ललनाओं की॥
कितनी बहिनें समाजद्वारा, दिनरात सताई जाती हैं।
कितनी ही गुण्डों के द्वारा, हे देवि ! भगाई जाती हैं॥
यह सब होता है पर तेरी, कन्यायें अबतक सोती हैं।
लाचार और बेबस होकर, अपनी किस्मत को रोती हैं॥
अबतो हमपर करुणा करके, उनको तू शीघ्र जगादे माँ।
पिछले गौरव की याद दिला, कर्त्तव्यमार्ग दिखलादे माँ॥
भारत के नारीमण्डल में, फिरसे वैसा ही बल भरदे।
ओदयामयी निज दया दिखा ! अबलाओं को सबला करदे॥
होवे अब इस देश की, दुःख निशा का अन्त।
फैले फिर से पूर्व में, सुख की ज्योति ज्वलन्त॥
फिर से पैदा हों भारत में, कुन्ती, माद्री, और गान्धारी।
पति में निरता, वे पतिव्रता, कुरुकुल की शीतल उजियारी॥

फिरसे उत्तरा, सुभद्रा सी, पैदा हों घर घर में नारी।
अभिमन्यु आदि सी सन्तानें, खेलें फिर घर घर में प्यारी॥
कौशल्या कोई आकर के, फिर से पैदा श्रीराम करे।
देवकी रूप होकर कोई, उत्पन्न मञ्जु घनश्याम करे॥
सीता सावित्री सी सतियाँ, फिर से माता अवतार धरें।
अपने कार्यों से भारत का, मुख उज्ज्वल सभी प्रकार करें॥
ऐसी माताओं के बालक, होंगे फिर कभी अशक्त नहीं।
अपमानों पर गर्मा न उठे, होगा वह हममें रक्त नहीं॥
अच्छी माताओं के जाये, बालक भी अच्छे होते हैं।
होती है भूमि सबल जैसी, तरु उसके वैसे होते हैं॥
इसलिये देश को उन्नति पर, कर सकती है केवल माता।
सुख का वर देकर दुःख दैन्य, हर सकती है केवल माता॥

गाना

दुःख हम सबका मिटा, सकती है केवल माता।
देश को राम से छुड़ा, सकती है केवल माता॥
दिल में गर चाहे तो, आकर के यहाँ ऊषासी।
सब अन्धेरे को मिटा, सकती है केवल माता॥
यह हवा है बो जो, फस्ले बहार को लाकर।
देश की कलियां खिला, सकती है केवल माता॥
फिर से श्रीराम से, बालक को जन्म दे "बाला"।
हमको आबाद करा, सकती है केवल माता॥

—o—

राजन् अब आगे सुनो, वह सारा वृत्तान्त।
जैसे शुंभ निशुंभ का, किया गया प्राणान्त॥

वह समय बड़ा संकटमय था, जब जग में अति कुविचार बढ़ा ।
जब सन्तों को पीड़ित करने, दुष्टों का अत्याचार बढ़ा ॥
वह समय ! उसे लिखपाने में, निर्जीव क़लम थर्राती है ।
उसका कुछ वर्णन करने में, वाणी भी रुक रुक जाती है ॥
उन दिनों निशुंभ शुंभ नामी, दो दैत्य हुये अति बलवाने ।
मानों हों राहुकेतु दोनों, क्रोधी और मद में मतवाले ॥
मन में भरकर के अहङ्कार, अपना सब ज्ञान गँवाकर वे ।
देवों को लगे कष्ट देने, देवों ही से वर पाकर वे ॥
सच है, सज्जन यदि दुर्जन पर, उपकार कभी कर जाते हैं ।
तो उसके बदले में उनसे, अपकार हमेशा पाते हैं ॥
दुर्जन दुर्जन ही होता है, सज्जन सज्जन ही होता है ।
कितना भी कोई चाल करे, कड़वाहट नीम न खोता है ॥
काला विषवाला ही होगा, चाहो तो दूध पिलाओ तुम ।
काटेगा यद्यपि कितना ही, वंशी सा उसे हिलाओ तुम ॥

अच्छा अथवा बुरा हो जिसका जो व्यवहार ।
उसे मेटने की सभी, है कोशिश बेकार ॥

बेकार है कोशिश दुष्टों को, अच्छे रस्ते पर लाने की ।
बेकार है कोशिश पत्थर से, पानी की बूंदें पाने की ॥
सूरज न कभी शीतल होगा, गर तुम प्रयत्न हर बार करो ।
आगी न कभी ठंढक देगी, कोशिश गर रोज़ हज़ार करो ॥
इसलिये दुर्जनों पर करुणा, करना बिलकुल नादानी है ।
इन्द्रायन में मधुका सिञ्चन, जड़ता की एक निशानी है ॥
वर पाकर शुंभ निशुंभ दुष्ट, दोनों यों मन में फूल गये ।
अपने वरदाता देवों का, उपकार सभी वे भूल गये ॥

उनको हर रोज़ सताने में, कुछ लाज न इनको आती थी।
बेपानी की वह आँख कुटिल, बिल्कुल न कभी शरमाती थी॥
देवलोक में पूर्णतः, था इनका आतङ्क।
कांप रहे थे भीत हो, सुरगण सभी सशङ्क॥
उनके भय से डरकर मन में, सूरज न तेज़ होपाता था।
चन्द्रमा सदा उनके द्वारे, सेवायें सभी बजाता था॥
घर से बाहर उनके ऊपर, बादल छतरी हो छाता था।
उन दोनों दैत्य बन्धुओं पर, पंखा सा पवन डुलाता था॥
अधिकार छीनकर देवों का, पहले अपमानित किया उन्हें।
फिर देवलोक की सीमा से, बाहर बिल्कुल कर दिया उन्हें॥
सब देव स्वर्ग से बाहर हो, भूतल पर फिरने लगे दुखी।
दुष्टों के द्वारा दुनिया में, कोई भी सुख से रहा कभी?
जो कभी स्वर्ग में रहते थे, वे अब कांटों में फिरते हैं।
अमृत रस के पीनेवाले, पानी के लिए तरसते हैं॥
लीलामय की लीला अपना, कौतुक कैसा दिखलाती है।
सज्जन पर कष्ट परीक्षा के, कैसे कठोर दिन लाती है॥
किस्मत में जो कुछ होता है, वह कभी नहीं टल सकता है।
है भाग्य प्रबल इस दुनिया में, इससे न ज़ोर कुछ चलता है॥

गाना

किस्मत पै ज़ोर किसका, दुनिया में यार चलता।
यह वह है जिसके बलपर, हम सबका कार चलता॥
जिसने कि ज़िन्दगी में, दुनिया को सर किया था।
दो इंच भी न अब तो, उसका मज़ार चलता॥

जोरोजफा से जिसने बेकस को पीस डाला ।
एकदिन वो खुद ही मरकर दुनिया के पार चलता ॥
दिखती नहीं है हमको, किस्मत कहाँ है क्या है ।
"ज्वाला" परन्तु इसका, हरवक्त तार चलता ॥

—०—

लाता है किस ओर से, लेजाता किस ओर ।
चलता है प्रारब्ध पर, कहाँ किसी का ज़ोर ॥
संसार समूचा चलता है, जिनके बस एक इशारे से ।
वे लीलामय हैं बँधे हुये, किस्मत के कठिन सहारे से ॥
पर जो विपत्ति में पड़कर भी, धीरज कायम रख पाते हैं ।
वे ही मनुष्य इस दुनिया में, आकर के कुछ करजाते हैं ॥
यों तो ऊपर उठ उठ कर के, लाखों नीचे गिरजाते हैं ।
पर वे सच्चे हैं जो गिर २ कर, फिर ऊपर को उठजाते हैं ॥
कहते हैं गिरा हुआ उसको, जो फिर न कभी उठ पाता है ।
गिरकर उठजाय अगर कोई, तो वह न गिरा कहलाता है ॥
इसलिये विपद में पड़कर के, पीछे न तुम्हें हटना होगा ।
कुछ नाम अगर कर जाना है, तो गिरगिर कर उठना होगा ॥

पड़कर ऐसी विपद में, वह सारा सुरवृन्द ।
ज्ञानी नर की तरह ही, हुआ न कुछ भी मन्द ॥
दुष्टों के अन्याय से, होकर बहुत उदास ।
पहुँचा वह आदर सभी, माँ गौरी के पास ॥

उनको न जीत सकता कोई, वे अपराजिता कहाती हैं ।
परमेश्वर की शक्तियाँ सकल, उनमें ही आश्रय पाती हैं ॥
यदि दया हुई उनकी तो फिर, ये दानव सब मर जायेंगे ।
उनकी करुणा से देवों के, दिन फिर सुख से भर जायेंगे ॥

बस यह विचार करके मन में, सुरवृन्द हिमालय पर जाकर ।
गुण गाने लगे प्रीतिपूर्वक, गौरी की छवि मन में लाकर ॥
बोले–"जो माँ करुणा करके, इस जग की सृष्टि रचाती हैं ।
फिर पालन पोषण कर उसका, क्रम से संहार मचाती हैं ॥
वे माता जो कि चराचर में, हरि की माया कहलाती हैं ।
उन को देवों की मण्डलियाँ, सादर निज शीश झुकाती हैं ॥
माँ ! तुम्हीं विष्णु की प्रतिभा बन, हमको चैतन्य बनाती हो ।
संसार-सिन्धु की नौका हो, हमको उस पार लगाती हो ॥
माता ! ये शुंभ निशुंभ दुष्ट, हमको दिनरात सताते हैं ।
इसलिये तुम्हारी सेवा में, हम अपना दुःख सुनाते हैं ॥
जैसे महिषासुर मारा था, वैसे ही इनको मारो माँ !
हम दुःखसिन्धु में डूब रहे, आकर अब हमें उबारो माँ !"

गाना

"माँ ! तुम्हें भक्ति से ध्याते हैं ।
सादर निज शीश झुकाते हैं ॥
करदो हम सबके पूर्ण काम ।
हम करते हैं तुमको प्रणाम ॥
संसार तुम्हीं में स्थिर होता ।
तुममें विनष्ट आखिर होता ॥
लखकर तेरी लीला ललाम ।
हम करते हैं तुमको प्रणाम ॥
माँ ! कहीं क्षुधा और बुद्धि कहीं ।
निद्रा, छाया, और शक्ति कहीं ॥

होकर तुम करती हो मुकाम ।
हम करते हैं तुमको प्रणाम ॥
भक्तों में कहीं दया होकर ।
लज्जा और शान्ति क्षमा होकर ॥
करती हो अपना मंजुधाम ।
हम करते हैं तुमको प्रणाम ॥
माता हमपर करुणा करदो ।
दुष्टों का शीघ्र नाश करदो ॥
करदोगी क्या इतना न काम ।
हम करते हैं तुमको प्रणाम ॥

—०—

सुन करके सुखचन्द का दुःखपूर्ण सब हाल ।
आई तब शिवशक्ति हो, माँ गौरी तत्काल ॥
बच्चों का आर्त्तनाद सुनकर माता कब मौन रहा करती ।
उनका दुख देख देख करके, वे कब चुपचाप सहा करतीं ॥
उनको विलोककर देवों के, मनमें आनन्द अपार हुआ ।
जलमें, थलमें, नभमण्डलमें, गौरी का जय जयकार हुआ ॥
देवों पर करुणा करके जब, माँ गौरी आई ऊषा सी ।
सुख, शान्ति और उत्साह आदि, जग के हित लाई ऊषा सी ॥
तब देवों ने समझा उनकी, दुखरजनी का अवसान हुआ ।
फिरसे जगजननी के द्वारा, सुख का सुन्दर सामान हुआ ॥
अब फिर देवों के मण्डल में, देवों ही का शासन होगा ।
सुखमूल धर्म का जगती में, फिर से ऊँचा आसन होगा ॥
जगमें ऊषा के आने से, तम तोम कहाँ रह पायेंगे ।
जब माता ने करुणा की है, तो दानव मारे जायेंगे ॥

गौरी के तन से वहीं, उज्ज्वल और अनूप ।
सात्विक तत्वों से बना, प्रकट हुआ एक रूप ॥
गौरी के तन के कोशों से, यह रूप जो तन पाकर आया ।
इसलिये जगत में आकर के, कौशिकी नाम उसने पाया ॥
बोला वह रूप-"अभय हों सब, दुख सारा शीघ्र हरूँगी मैं ।
दैत्यों से लड़ जल्दी उनका, रण में संहार करूँगी मैं ॥
गौरी के अंगों से बन कर, कौशिकी जब कि बाहर आयीं ।
गौरी के अंग हुए काले, जिससे वो कालिका कहलायीं ॥
माता कौशिकी लगीं रहने, गिरिराज हिमालयपर जाकर ।
मानों चन्द्रमा उदय होकर, बैठाहो उच्च उदय गिरि पर ॥
अथवा जैसे घनमाला में, बिजली विलास करती होवे ।
या, शस्य-श्यामला वसुधापर, स्वर्गीय सुधा झरती होवे ॥

दैवयोग से शुंभ के, चण्ड मुण्ड दो दास ।
फिरते फिरते शैलपर, आवे माँ के पास ॥
उन दोनों ने जब लखा, माँ का रूप ललाम ।
गये शीघ्र ही दौड़ते, अपने प्रभु के धाम ॥
बोले-"हे नाथ ! हिमालय पर, देखी हमने एक नारी है ।
उसकी उजियारी के आगे, फीकी शशि की उजियारी है ॥
वह सभी दिशाओं में अपना, सुन्दर प्रकाश फैलाती है ।
मानवीरूप में वह कोई, देवी सी हमें दिखाती है ॥
उसकी छवि ने सुन्दरियों का, सब गर्व खर्व कर डाला है ।
महाराज ! आपहीके लायक, वह गिरि विहारिणी बाला है॥
इस समय आपके पास प्रभो ! कहिये तो भला क्या कमी है ।
ऐरावत सा गजरत्न और, सुरतरु सा वृक्षरत्न भी है ॥

जलनिधि ने अपना छत्र दिया, ब्रह्मा ने मञ्जु विमान दिया ।
यम ने दे शक्ति आपको प्रभु ! अपने ही सा बलवान किया ॥
महाराज ! आपके महलों में, मुक्ता मणियों की ढेरी हैं ।
यह रमणी मणि लेने में फिर, कर रहे आप क्यों देरी हैं ॥
सच कहता हूँ इस नारी से, जीवन जीवन हो पायेगा ।
सुरपति का भी सौभाग्य नाथ, लज्जित होकर रह जायेगा ॥

सुन करके उस क्षण वहाँ, चण्ड मुण्ड के बैन ।
दोनों शुंभ निशुंभ के, हँसे हर्ष से नैन ॥

वे बोले, "क्या कहते हो तुम, क्या वह ऐसी ही नारी है ?
क्या चन्द्र चाँदनी से बढ़कर, उसकी उज्ज्वल उजियारी है ?
तो जावो चण्डमुण्ड उस को, इस जगह अभी सत्वर लाओ ।
सुख से यदि आवे तो सुख से, अथवा बलपूर्वक हरलाओ ॥
ऐसा धन पाकर मौन रहें, यह भला कहीं होसकता है ।
अपना शिकार पाकर उसको, कब बाज भला खोसकता है" ॥
ऐसे ही बुरे खयालों से, लङ्का का राजा नष्ट हुआ ।
दुर्योधन इन्हीं खयालों से, कुरुदल के सहित विनष्ट हुआ ॥
इन दोनों दुष्टों के मन को, घेरा अब इन्हीं खयालों ने ।
आखिर उनका संहार किया, उनकी ही पापी खयालों ने ॥
नारी के घोर निरादर का, जैसा विचार मन में आया ।
माता के हाथों से तत्क्षण, वैसा ही उनने फल पाया ॥

नारी सुख का मूल है, नारी सुख की खान ।
नारी का सम्मान कर, होते मनुज महान ॥

इसलिये अगर यश पाना है, तो नारी का सम्मान करो ।
कुछ नाम अगर कर जाना है, तो नारी का सम्मान करो ॥

जग में वह देश उठा ऊँचा, जिसने नारी का मान किया ।
पर मिला खाक में लङ्का सा,जिसने उसका अपमान किया ॥
पहले जब महिलामण्डल का, भारत में आदर ऊँचा था ।
तब उसका चरण कमल वंदन, करता संसार समूचा था ॥
थे एक राम, सीता के हित, जिनने रावण का नाश किया ।
पाण्डव थे, जिनने कौरव का, नारी के लिये विनाश किया ॥
अब हरी जारही हैं हरदम, कितनी ही नारी भारत में ।
पर कौन खोज करता उनकी, रघुराई सा इस भारत में ॥
कितनी ही पाञ्चाली के अब, नित वस्त्र उतारे जाते हैं ।
पर कौन पाण्डवों की नाईं, बदले में शस्त्र उठाते हैं ॥
इसलिये देश यह सदियों से, होरहा रात दिन भारत है ।
अब तो बस नाम नाम ही है, भारत अब नहिं वह भारत है ॥

गाना

अरे ओ मेरे भारत देश, होरहा कैसा तेरा वेश ।
बिछरे हैं बतलादे कैसे, तेरे सुन्दर केश ॥ अरे ओ मेरे० ॥
भूल गया तू क्यों निज गौरव, अपना ज्ञानध्यान बल वैभव ।
भूल गया क्यों नटनागर का, गीता का सन्देश ॥ अरे ओमेरे० ॥
कहाँ राम बलधाम कहाँ हैं, लीलामय घनश्याम कहाँ हैं ।
कहाँ वीर अर्जुन सा करता, अब कोई रणवेश ॥ अरे ओमेरे० ॥
किसनी ही द्रौपदी बिचारी, अपमानित होती हैं भारी ।
प्रभो ! देखलो द्वापर का है, यही मामला पेश ॥ अरे ओमेरे० ॥
आओ कृष्ण ! आज फिर आओ, फिर से गिरता देश उठाओ ।
आओ हमें जगाओ आकर, करुणाकर गोपेश ॥ अरे ओमेरे० ॥

आदर कर जिस नारि का, बड़ा हुआ संसार ।
उससे ही अपमान का, खल ने किया विचार ॥
भेजा शुंभ निशुंभ ने, जो अपना प्रिय दास ।
गया शैल पर शीघ्र वह, देवी जी के पास ॥
उस दास ने अपने स्वामी का, सन्देश सुनाया माता को ।
कामी का कामविचार सभी, निश्शंक बताया माता को ॥
वह बोला, यहाँ अकेली हो, क्यों बैठी हो बन में बाला ?
क्यों नहीं शुंभ के महलों में, करती हो, चलकर उजियाला ?
क्या खूब कि खिलखिलकर बन में, यह फूल यहीं मुरझाजावे ।
राजा के महलों तक उसकी, मुखकारक सुरभि न जापावे ॥
यह मणि कञ्चन से मिल करही, निज शोभा समुचित पावेगी ।
इस पर्वत पर रहकर तो बस, मिट्टी ही में मिल जावेगी ॥
सार्थक है वही रूप जग में, जिसका रस कोई पान करे ।
सौन्दर्य निरर्थक होता वह, जो सुख न किसी को दान करे ॥
इसलिये बात जो कहता हूँ, उसपर हे बाले ध्यान धरो ।
हो रानी शुंभ वीरवर की, यह यौवन अपना सुफल करो ॥
सुनकर कामी शुम्भ का, ऐसा वह सन्देश ।
हँस करके कहने लगीं, यों वे देवि सवेश ॥
"हे दूत ! तुम्हारे कहने का, आशय सब समझ लिया मैंने ।
लेकिन तुमको बतलाती हूँ, प्रण जो अति कठिन किया मैंने ॥
जो मुझे युद्ध में जीतेगा, उससे ही ब्याह करूँगी मैं ।
वरना योंहीं क्वांरी रहकर, जीवन निर्वाह करूँगी मैं ॥
इसलिए शुम्भ को यथा शीघ्र, मेरा यह प्रण बतलाकर के ।
लड़ने के लिए लिवा लाओ, शस्त्रास्त्रों से सजवा करके ॥

कहना पर्वतपर बैठी है, एक दीपशिखा सी वर नारी ।
चलकर पतंग से कूदपड़ो, यदि हो तुममें साहस भारी" ॥
सुने जभी उस दूतने, देवी जी के बैन ।
हंसकर यों कहने लगा, करके तीखे नैन ॥
"इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, तुम दीपशिखा सी हो बाला ।
मेरे स्वामी के महलों में, होगा तुम से अति उजियाला ॥
पर उसे पतंग बताने में, मृग नैनी भूल तुम्हारी है ।
वह तो प्रचण्ड आंधी समान, दुर्दान्त और भयकारी है ॥
सुन्दरी ! छोड़ दो प्रण अपना, उससे लड़ना है व्यर्थ यहाँ ?
आंधी के आगे टिकने का, है दीपक में सामर्थ कहाँ ?
क्या ताकत अबाबील की है, जो वह शिकरे से भिड़ जावे ।
क्या ताकत एक लता की है, जो वह आंधी से अड़ पावे ॥
वह कहाँ-और तुम कहाँ सुमुखि, मत करो जान कर नादानी ।
मेरी मानो, सुख पाओगी, सुनकर उस योद्धा की सानी ॥
"पाया है किसने भला, उसके बल का पार ।
उसे जीतने का तजो, चन्द्रानने विचार ॥
"तुम हो यदि रूपवती नारी, तो वह भी शक्तिमान् नर है ।
तुम हो उसके सायक, तो वह बस योग्य तुम्हारे ही वर है ॥
गङ्गाजी चलकर के रमणी ! क्यों नहीं सिन्धु से मिलती हो ।
अथवा कंकण में जड़कर के, क्यों नहीं कनी सी खिलती हो ॥
मेरे स्वामी के विक्रम से, सुरराज लोग थर्राते हैं ।
उसको प्रसन्न करने के हित, कितनी ही भेंट चढ़ाते हैं ॥
आतङ्क न उसका हो जिससे, ऐसा कोई भी गेह नहीं ।
वह आज जगत् का ईश्वर है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥

क्या भला तुम्हारी हस्ती है, जो उससे युद्ध करो भारी ।
वह महा प्रतापी शूर वीर, तुम सुकुमारी अबला नारी ॥
क्यों संकट व्यर्थ बुलाती हो, निज प्रण के झंझट में पड़कर ।
रमणी न विजय पा सकती है, रण में रणधीरों से लड़ कर ॥
अतएव चलो, कहना मानो, मिथ्याभिमान का त्याग करो ।
यदि जन्म सुफल करना है तो, निशिचर पति से अनुराग करो ॥

शुम्भ-दूतका कथन यह, सुनकर भले प्रकार ।
माता यों तत्काल ही, बोली वचन विचार ॥

"सच कहते हो तुम दूतराज, मैं हूँ दुर्बल कोमल नारी ।
और उस पर यहाँ अकेली ही, फिरती हूँ बन बन में मारी ॥
यद्यपि कुछ साधन नहीं, किन्तु लड़ने की हिम्मत है भारी ।
मैं पीछे पग न हटाऊँगी केवल इसलिये कि हूँ नारी ॥
तुम कहते हो मुझ नारी का, नर से लड़ना है व्यर्थ यहाँ ।
नारी पर जयपाने का पर, नर में होगा सामर्थ कहाँ ॥
नारी माता कहलाती है, नर बच्चा ही कहलाता है ।
नारी की करुणा ही से तो, नर अपना जीवन पाता है ॥
माता को रणमें जीत सके, ऐसी बच्चे में शक्ति कहाँ ।
नारी का जो अपमान करे, ऐसा दुनियाँ में व्यक्ति कहाँ ॥
इसलिये शुम्भ की क्या गति है, जो वह लड़ने है आज चला ।
क्या शक्ति अँधेरे की है, जो बिजली के आगे टिके भला" ॥

मुझसे लड़ने का न वह, करे व्यर्थ ही कष्ट ।
वरना भाई के सहित, होगा शीघ्र विनष्ट" ॥

"कहदो हे दूत ! वहाँ जाकर, मुझसे न आज वह रार करे ।
निर्बल होकर बलवाले से, क्यों भला व्यर्थ तकरार करे ॥

नारी से रार बढ़ाने का, फल कभी न अच्छा होवेगा ।
पावक पर झपटेगा पतङ्ग, तो अपना ही तन खोवेगा ॥
क्या एक शुम्भ की कहते हो, यदि लाखों शुम्भ यहाँ आवे ।
फिर भी मैं हूँ वह महाशक्ति, जिस पर वह जयी न हो पावें ॥
क्या मतलब है इन बातों से, प्रण जो कुछ मैंने ठाना है ।
हे दूत! उसे तो किसी तरह, आजीवन मुझे निभाना है ॥
जो ठान चुकी सो ठान चुकी, अब कभी न उसको छोड़ूँगी ।
यह जान अगर जावे तो भी, प्रण अपना कभी न तोड़ूँगी ॥
डरकर क्या शुंभ निशाचर से, अपनी मर्यादा भंग करूँ ।
नारी हूँ तो क्या पुरुषों से, डरकर मैं कभी न जङ्ग करूँ ॥

गाना

कहता है कौन नारियों में, कुछ भी बल नहीं ।
है सच तो यह कि इन को हराना सरल नहीं ॥
लड़कर इन्हें जो सामने, रण में हरा सके ।
पैदा हुआ है ऐसा कोई, भी सबल नहीं ॥
इतिहास अपना पहले का, जिस ओर खोलदो ।
देखो वहीं पै नाम क्या इनका अटल नहीं ॥
पूजी गई हैं नारियाँ, इस देश की "ज्वाला" ।
उनको झुकाती शीश क्या दुनिया सकल नहीं ॥

—o—

सुनकर के जगतजननि के, निर्भय वचन कराल ।
हुए शुंभ के दूत के, नेत्र क्रोध से लाल ॥
बोला, ओ मूर्ख सुन्दरी ! मैं, जितना तुझको समझाता हूँ ।
जितना ही तुझे राजरानी, बनने की राह बताता हूँ ॥

उतनी ही क्या जानें क्योंकर, तेरी मति कटती जाती है ।
रस्ते पर आने के बदले, पग पग पर बहकी जाती है ॥
जब नाश किसी का होता है, तब उसकी मति होजाती है ।
जो हित की कहता है उसकी, कुछ बात न उसको भाती है ॥
इससे यह ज्ञात होरहा है, या तो विनष्ट हो जायेगी ।
अथवा यह स्वामी के द्वारा, जीवित बंधन में आयेगी ॥
शुंभ से शूर की महिमा पर, देती है कुछ तू ध्यान नहीं ।
वह अगर बिगड़ बैठेगा तो, उसका रुकना आसान नहीं ॥
इसलिये व्यर्थ बैठे बैठे, क्यों अपनी मौत बुलाती है ।
क्यों नहीं साथ मेरे चलकर, महलों में छवि सरसाती है ॥
दो राह खुली हैं उनमें से, तू किसी एक पथ पर होजा ।
या तो सुख शय्या पर सोजा, या मरने पर तत्पर होजा ॥

कहना मेरा है यही, तुझसे अन्तिम बार ।
या तो हो इस पार तू, या होजा उस पार ॥
इधर सभी सुखसाज हैं, पुरजन परिजन नृत्य ।
उधर मचा है मृत्यु का, भीषण तांडव नृत्य ॥

सुनकर उपदेश दूतवर का, जग जननी ने यह बात कही ।
मानों भूपर शशिमण्डल से, अमृत की शीतल धार बही ॥
हे दूत बात ऐसी कहकर, किसको तुम आज डराते हो ।
कुम्हड़े की बतिया यहाँ कहाँ, जिसको अँगुली दिखलाते हो ॥
क्यों वृथा शुम्भ का बल वर्णन, इतना बढ़ बढ़कर करते हो ।
ऐसी अभिमान भरी वाणी, कहते तुम जरा न डरते हो ॥
खाली बर्तन जो होता है, वह ठन ठन शब्द सुनाता है ।
जो बादल बहुत गरजता है, वह कभी न जल बरसाता है ॥

तेरे इस अहङ्कार से तो, खालीपन पाया जाता है ।
क्या अपने ही मुँह से कोई, अपनी बलगाथा गाता है ॥
जब तक न ऊँट निज जीवन में, ऊँचे पर्वत तक जाता है ।
तब तक बस वह अपने ही को, सब से ऊँचा ठहराता है ॥
इसलिये उचित है यह उसको, घर ही में ऊँचा हुआ करे ।
और किसी शैल तक जाने का, अभिलाष न मनमें किया करे ॥

माँके ऐसे उक्ति सुन, होकर बहुत उदास ।
गया दूत वह वहाँ से, शुंभराज के पास ॥

फिर माता का सन्देश सभी, बतलाया अपने स्वामी को ।
साध्वी का शुद्ध विचार सभी, बतलाया उसने कामी को ॥
कुछ सच कुछ झूठ बना करके, सब बातें उसने बतलाईं ।
माँ के विरुद्ध उस दानव की, क्रोधाग्नि खूब ही भड़काई ॥
माता से बातें करने में, जब पार न कुछ उसने पाया ।
तब उनसे बदला लेने का, मन में विचार यह ठहराया ॥
कुछ नमक मिर्च का लेप लगा, उसने सब हाल बयान किया ।
अवश्या कह कर देवी जी के, गुण गण का खूब बखान किया ॥
जब सुना शुंभ ने जननी का, सारा सन्देश दूत द्वारा ।
ऊँचा चढ़ गया शीघ्रता से, तब उसके गुस्से का पारा ॥

बली निशाचरराज वह, बोला होकर दुष्ट ।
सच मुच अबला नारिका, भाग्य हुआ है रुष्ट ॥

"हे दूत ! कौन इस दुनिया में, पैदा ऐसा शहजोर हुआ ।
किसकी ताक़त के बिस्तर पर, नारी में ऐसा जोर हुआ ॥
है कौन, कि बिलकुल ही क़रीब, जिसके जीवन का छोर हुआ ।
सच कहता हूँ इन बातों से, अपमान हमारा घोर हुआ ॥

यदि सच है सभी बात तेरी, जो तूने अभी बताई है ।
तो सचमुच ही उस नारी के सिर, मौत आज मँडराई है ॥
मैं क्या कर सकता हूँ जब वह, खुद अपनी मौत बुलाती है ।
वरना मेरा अपमान करे, ऐसी किसकी दृढ़ छाती है ॥
संभव है कहाँ, कि यह कह कर, नारी वह जीती बच जाये ।
चिड़िया सूरज तक उड़े मगर, कुछ देह न उसकी झुलसाये ॥
इसलिये न मुझे दोष है अब, उसके सिर काल बोलता है ।
और रहरहकर यह हाथ मेरा, अपनी तलवार तौलता है ॥

गाना

हुआ कौन ऐसा बलवान ।
मुझसे रण करने का किसके, मन में छाया है अज्ञान ॥ हुआ० ॥

किसकी आज मृत्यु है आई,
किसकी मति ऐसी बौराई,
किसमें ऐसी शक्ति समाई,
मुझसे लड़ने की ठहराई,
है वह कौन, नहीं है जिसको, अपने प्राणों का कुछ ध्यान ॥ हुआ० ॥

मैं हूँ कठिन काज सा रण में,
अटल अचल हिम गिरि सा प्रण में,
दुर्जय निर्भय समरांगण में,
मेरी सत्ता है कण कण में,
किसमें ताकत है जो मुझसे युद्ध भूमि में ले रण ठान ॥ हुआ० ॥

हुई कौन ऐसी वह बाला,
कौन बना उसका रखवाला,
किसके बल से बढ़कर "ज्वाला"
मेरा असम्मान कर डाला ।
संभव है क्या पीजाऊँ मैं अपना यह ऐसा अपमान ॥ हुआ कौ०

—०—

विदा किया उस दूत को, कहकर ऐसे बैन ।
पर न शुंभ के चित्त में, आया कुछ भी चैन ॥

आता था ज्यों ज्यों उसे, अपने बल का ध्यान ।
त्यों ही त्यों खलने लगा, उसको यह अपमान ॥

फिर उसने एक धूम्रलोचन, नामी नायक को बुलवाया ।
और सारी कथा सुना उसको, अपना विचार दृढ़ बतलाया ॥
यह कहना उसने शुरू किया, उसको सब बातें समझाकर ।
मानो कोई सूखा बादल, गरजा हो नभ में घहराकर ॥
"देखो तो अरे धूम्रलोचन, वह कौन सुन्दरी नारी है ।
प्यारी मनहारी है लेकिन, विष की सी बुझी कटारी है ॥
गिरिराज हिमालय के ऊपर, क्यों भला अकेली बैठी है ।
किसका बल पाकर वह बाला, अबला होकर भी ऐंठी है ॥
इसलिये धूम्रलोचन जाओ, उसका घमण्ड सब चूर करो ।
नारी पर दया दिखाने का, मनसे खयाल सब दूर करो ॥
उसकी सहायता करने को, कोई भी अगर वहाँ आवे ।
तो मेरा है आदेश कि वह, जीता न कभी जाने पावे ॥
आवे पहाड़ यदि मारग में, तो आंधी बनकर चूर करो ।
स्वामी का कारज करने को, प्रस्थान शीघ्र हे शूर ! करो ॥

सेनापति ने शुंभ की, उस आज्ञा को मान ।
मां से लड़ने के लिये, तत्क्षण किया पयान ॥

एक नारी पर जय पाने का, मन में करके अभिमान चला ।
अबला से युद्ध मचाने का, करके विचार बलवान् चला ॥

कुछ शर्म न नर मन में लाया, अबला नारी से लड़ने में ।
बच्चा न तनिक भी शरमाया, रण में माता से भिड़ने में ॥
जिसके चलने से किसी समय. देवों का था सब धीर चला ।
एक रमणी पर अपना पौरुष, दिखलाने वह रणवीर चला ॥
पर यह नारी ऐसी वैसी, साधारण निबल न नारी थी ।
बिल्ली तक से डरने वाली, सुन्दरी न यह सुकुमारी थी ॥
गौरी के वर हाथों से जो, रमणीमणि गई सँवारी थी ।
वीरता दिखाने वाली वह, भारत की सच्ची नारी थी ॥
गुड़ियों का खेल छोड़कर यह, तलवारों ही से खेली थी ॥
सांगें ही इसकी सखियां थीं, और बरछी चारु सहेली थी ॥
जितनी यह भोली भाली थी, उतनी ही भरी चतुरता थी ।
कोमलता थी, पर साथ साथ, लड़ने की भी आतुरता थी ॥
था उन दुर्गा देवि में, सभी गुणों का मेल ।
सुख दुख हर्ष विषाद सब, वे सकती थीं झेल ॥
ऐसी ही गुणवाली नारी, इस समय काम कर सकती हैं ।
दासता देश के लोगों की, कम कम से सब हर सकती हैं ॥
दुर्गा माता की तरह अगर, हम सबकी माताएँ होवें ।
तो क्यों भारत की सन्तानें, दुख से कातर होकर रोवें ॥
दुर्गाएँ होंगी तो गुण्डे, आबरू न हरने पावेंगे ।
ऊषा की लाली देख देख, उल्लू न विचरने पावेंगे ॥
क्या शक्ति सियारों में होगी, जो सिंहनियों पर वार करें ।
क्या साहस दुष्टों में होगा, सतियों पर अत्याचार करें ॥
इसलिये अगर अपनी इज्ज़त, माताओ तुम्हें बचाना है ।
अपनी भावी कन्याओं को. यदि सुख का पथ दिखलाना है ॥

तो आओ बाहर निकल पड़ो, लेकर तलवारें दुर्गा सी ।
और शीघ्र बहादो दुष्टों के, शोणित की धारें दुर्गा सी ॥

गाना

दशा को अपनी निहार बहिनो ! दिखादो फिर वह सुवेश अपना ।
बहुत दिनों तक रही हो सोती, सजादो फिर युद्धवेश अपना ॥
यहाँ जो देखो तो आज घर घर, सभी हैं युद्धविज्ञ, सभी हैं कायर ।
सभी हैं भक्षक, न कोई रक्षक, यही है क्या वह सुदेश अपना ॥
है कौन ऐसा जो आज आवे तुम्हारी विपदा सभी नसावे ।
नहीं है कोई भी ऐसा जिसको, सुनाओ तुम दुख अशेष अपना ॥
तभी सभी कष्ट दूर होंगे, तुम्हारे सङ्कट भी चूर होंगे ।
दिखाओगी जब सभी को बहिनों ! कराल दुर्गा सा वेश अपना ॥

—०—

निज सेना के साथ में, वह सेनापति वीर ।
पहुँचा पर्वतराज पर, माता जी के तीर ॥
देखा उसने उस पर्वत पर, एक नारी छबि में सनी हुई ।
गौरी सी सुन्दर दिखती है, गौरी के हाथों बनी हुई ॥
माथे पर चारु-चन्द्रिका सा, मञ्जुल किरीट था सोह रहा ।
जिसकी उज्ज्वल उत्तम छबि से, भक्तों का मन अति मोह रहा ॥
उसके पट वस्त्र देखकर के, बन की श्री निपट लजाती थी ।
बनफूल पहन कर वह कोई, बनदेवी सी दिखलाती थी ॥
थी एक हाथ में गदा और, दूजे में खड्ग चमकता था ।
तीजे में भाला दबा हुआ, चौथे में शूल दमकता था ॥
दानव दुष्टों का उष्ण रुधिर, पीने की प्रबल आस ही में ।
माता का वाहन सिंह एक, बैठा था वहाँ पास ही में ॥

वह कभी भक्ति और श्रद्धा से, माता के चरण चाटता था ।
और कभी याद कर दुष्टों को, गुस्से से ओंठ काटता था ॥
कहने का यह तात्पर्य कि सब, माता का ठाट निराला था ।
इस ओर शान्ति में सना हुआ, उस ओर वीरतावाला था ॥

भक्तों की भयहारिणी, माँ की ऐसी मूर्ति ।
मङ्गलकर होकर सदा, करे सुखों की पूर्ति ॥
पाकर के जिस मूर्ति को, धन्य हुआ हिमवान ।
वही मेट दे जगत का, मोह और अज्ञान ॥
अब तक माँ के पास में, आये दैत्य कराल ।
तब का कहता हूँ तुम्हें, हे राजन् सब हाल ॥

आया जब वहाँ धूम्रलोचन, मेघों सा गुणगर्जन करता ।
अपने ऊँचे हुङ्कारों से, पृथ्वीतल में कम्पन करता ॥
तब उसे देख कर माता का, वाहन वह सत्वर खड़ा हुआ ।
जग उठा सिंह जो था अब तक, निस्नेह भाव से पड़ा हुआ ॥
उसने ऊँची गर्दन करके, दुष्टों का वृन्द सकल देखा ।
मानो क्रोधित होकर कोई, हो मृगछौनों का दल देखा ॥
दुष्टों का गर्म गर्म लोहू, पीने को प्रबल चाव से वह ।
बरसाने वाले बादल सा, गरजा गंभीर भाव से वह ॥
फिर उसने जननी को देखा, आशा करके जयपाने की ।
मानों माँ से आज्ञा माँगी, दुष्टों को मार भगाने की ॥
उसका यह भाव देखकर के, माता ने उसको दुलराया ।
हाथों से थपकी दे देकर, कुछ शान्त उसे फिर कर पाया ॥

शान्त हुआ कुछ देर में, जब माँ का वह दास ।
असुर सैन्य का नाथ तब, आया उनके पास ॥

अंगारे की तरह से, करके दोनों नैन।
उसने माता से कहे, क्रोधित हो ये बैन॥
"सुन्दरी! शुंभ की बातों को, जो तूने अभी न माना है।
उसकी ही सजा सुनाने का, मंसूबा मैंने ठाना है॥
क्या जानें किस बिरते पर यों, अभिमान आज तू करती है।
नारी होकर वीरों की सी, किसलिए दून तू भरती है॥
अब काल सहायक हो तो भी, मैं तुझको आज न छोड़ूँगा।
प्रण तू ने जो कर रक्खा है, वह प्रण बल से मैं तोड़ूँगा॥
चल अगर शौक से चलना है, इसमें सम्मान तेरा होगा।
वरना बरजोरी हरलूँगा, जिससे अपमान निश होगा॥
इससे है योग्य यही तुझको, तू साथ हमारे चली चले।
क्यों जानबूझ करके बाला, तू भला मौत की गली चले॥
तेरा यह अभिमान सब, होवेगा बेकार।
क्या अपने अपमान का, तुझको नहीं विचार"॥
सुनकर यह, उन देवि ने, किये बैन उच्चार।
"तुम सबका बल ज्ञात है, मुझको सभी प्रकार"॥
है यह सब मुझको ज्ञात कि, तुम सब कैसी ताक़त वाले हो।
एक अबला से लड़ने वाले, तुम मर्द कहाने वाले हो॥
जाने पर भी तैयार नहीं, प्रण भी मैं कभी न तोड़ूँगी।
बढ़गया कदम जिस रस्ते पर, अब क्या उससे मुँह मोड़ूँगी॥
यदि भुज में बल हो तो मुझको, बरजोरी ही लेजाओ तुम।
या मेरे हाथों से मरकर, कुछ काम शुंभ के आओ तुम"॥
सुनकर यह बात धूम्रलोचन, माता जी के ऊपर धाया।
मानों मेघों का दल कोई, पर्वत के ऊपर मँडराया॥

माताने उसे देख आते, एक ऊँचा सा हुङ्कार किया ।
और उस दानव को उसी समय, बस वहीं जलाकर क्षार किया ॥
फिर दानवसेना का उनने, प्रारम्भ शीघ्र संहार किया ।
जो आया उसका वध करके, भवसागर के उस पार किया ॥

सेनापति का देखकर, यों रण में संहार ।
माँ के वाहन ने किया, अपना प्रगट विचार ॥

"माँ अब क्यों व्यर्थ लड़ रही हो, जब सेनापति ही नहीं रहा ।
यह कष्ट तुम्हारा करना अब, जाता है मुझसे नहीं सहा ॥
ये दांत और नख ये मेरे, यह जीभ हमारी भी माता ।
प्यासी थी ऐसी बरसों से, मैं जिसे नहीं कुछ कह पाता ॥
अब जब यह अवसर आया है, तो मुझको प्यास बुझाने दो ।
आज्ञा दो माँ ! इस बच्चे को, अपनी कुछ इच्छा मिटाने दो ॥
इनसे अब तुम न लड़ो माता ? इनसे लड़ने में अपयश है ।
इन नीच सियारों की खातिर, यह सिंह तुम्हारा ही बस है ॥
करुणा करके हे दयामयी ! अब इतना मेरा काम करो ।
मुझको रण करने जानेदो, और तब तक तुम विश्राम करो ॥

इतना कहकर सिंह वह, पा माँ का सङ्केत ।
चला दैत्य की सैन्य में, अति उत्साह समेत ॥

जाते ही जाते उसने सब, सेना का सत्यानाश किया ।
मृग के बच्चों ही सा उसने, दैत्यों का शीघ्र विनाश किया ॥
कितनों ही को नखसे फाड़ा, कितनों को चीरा दाँतों से ।
कितनों ही का संहार किया, पञ्जों के तीव्र घातों से ॥
यों तड़प तड़प करके उसने, एक आग लगादी सेना में ।
और जितने दानव थे सबकी, फिर मौत बुलादी सेना में ॥

उस सेना के बीच में, बचा न कोई वीर ।
पहुँचाता यह हाल जो, शुंभराज के तीर ॥
वह सिंह शान्त होकर पहुँचा, जिस ठौर देवि थीं खड़ी हुई ।
बच्चे का युद्ध देखकर वे, थीं जहाँ हर्ष से जड़ी हुई ॥
जाकर पहले माथा रक्खा, उसने माता के क़दमों पर ।
और फिर सेवक सा लोट रहा, उन देवी के पद पद्मों पर ॥
इस ओर हाथ माँ का अपने, बच्चे का तन सहलाता था ।
उस ओर सिंह भी माता के, वे चरण चाटता जाता था ॥
जिसने देखा वह मोह रहा, वह छवि ऐसी मनहारी थी ।
जगजननी दुर्गादेवी को, उस शोभा की बलिहारी थी ॥
कह सकता है क्या कोई भी, उस समय बँधा था जो कि समाँ ।
सब एक साथ कहदो स्वर से, जयमाँ, जयमाँ, जयमाँ, जयमाँ॥

गाना

हम कैसे तेरे गुण गावें, जयमाँ, जयमाँ, जयमाँ, जयमाँ ।
ऐसी हम शक्ति कहाँ पावें, जयमाँ, जयमाँ, जयमाँ, जयमाँ ॥
जब जब विपत्ति हम पर आवें, और झट्ट सिरपर मँडरावें ।
उस समय न तुझको बिसरावें, जयमाँ, जयमाँ, जयमाँ, जयमाँ ॥
दुर्दिन जब हों हम को घेरे, और सभी शत्रु होवें मेरे ।
तब तुझ में ही आश्रय पावें, जयमाँ, जयमाँ, जयमाँ, जयमाँ ॥
अज्ञान आदि सब नाश करो, विद्या का दिव्य प्रकाश भरो ।
हम ठीक राहही पर जावें, जयमाँ, जयमाँ, जयमाँ, जयमाँ ॥
सब के सब संकट दूर करो, "ज्वाला" मङ्गल भरपूर करो ।
जो तुझे भक्ति से नित ध्यावें, जयमाँ, जयमाँ, जयमाँ, जयमाँ ॥

इति ।

मङ्गला-चरण

भक्तों के भय-भञ्जन राम ।
दुष्टों के दलगञ्जन राम ॥
जय रञ्जन मन-रञ्जन राम ।
रघुपति राघव राजाराम ॥

भूतल के उद्धारक राम ।
साधुजनन के तारक राम ॥
दुखदारक सुखकारक राम ।
रघुपति राघव राजाराम ॥

जय सीतापति रघुवर राम ।
जय लीलापति दुखहर राम ॥
प्रभुवर जय करुणाकर राम ।
रघुपति राघव राजाराम ॥

"उजाला" को यह वर दो राम ।
इतनी करुणा करदो राम ॥
दुख हरलो सुख भरदो राम ।
रघुपति राघव राजाराम ॥

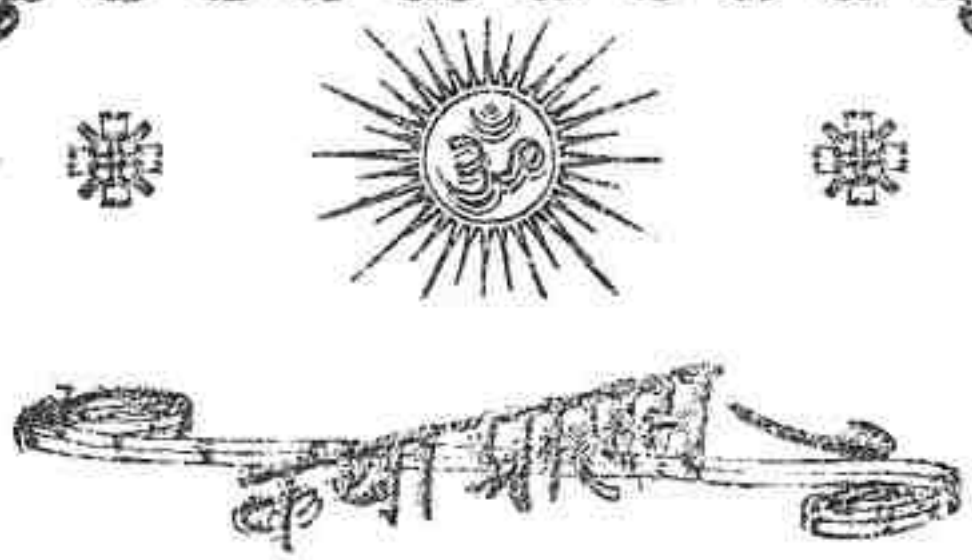

निज सेना का जब सुना, रण में यों संहार ।
दुष्ट शुम्भ तब चित्त में, क्रोधित हुआ अपार ॥
रण के इस परिणाम से, होकर बहुत अधीर ।
करने लगा विचार यों, मनमें वह वर वीर ॥

"मेरे इन कानों को किसने, यह दुस्सम्वाद सुनाया है ।
नामुमकिन बातों को किसने, ओः!मुमकिन कर दिखलाया है ॥
सम्भव है क्या, एक छोटी सी, चिड़िया शिकरे पर वार करे ?
अबला नारी रण पर चढ़ कर, नर वीरों का संहार करे ?
एक नन्ही कोमल बेल कहो, आंधी से आज अड़ी कैसे ?
मेरे शूरशूर लड़ाकों से, वह बाला भला लड़ी कैसे ?
पुरुषों से आकर भिड़ने का, नारी में कैसे बल आया ?
उन चूड़ी वाले हाथों ने, क्योंकर यह पौरुष दिखलाया ?
कितना ही इसे सोचता हूँ, यह बात न मनमें आती है ।
इन अद्भुत बातों को सुनकर, मेरी मति चक्कर खाती है ॥

जितना ही मैं कर रहा, इस पर और विचार ।
उतना ही होता नहीं, इस उलझन से पार ॥

क्या जानें मेरा दल कैसे, उस नारी के हाथों हारा ।
और कैसे मरा धूम्रलोचन, उस नव सुकुमारी के द्वारा ॥

इस ओर से तो थे शूर कई, वह रमणी वहाँ अकेली है ।
फिर भी उसकी ही जीत हुई, यह कैसी कठिन पहेली है ॥
कितनी ही ललनाओं को ये, मेरे गण नित हर लाये हैं ।
उन सबने चेरी सी हो कर, मेरे ये चरण दबाये हैं ॥
अब आज दैत्य सब वे ही थे, और उनका बलभी था वैसा ।
लेकिन नारी से हार गए, यह अचरज अहो हुआ कैसा ?'

बँधे हुए थे इस तरह, जब कि शुम्भ के ख्याल ।
उसी समय घटना घटी, सुनिये उसका हाल ॥
सहसा घन की गरज सी, नभमण्डल को चीर ।
जल थल में गूँजी वहाँ, ऐसी गिरा गँभीर ॥

"जग भर को जय करने वाला, क्यों चिन्तामें मशगूल हुआ? ।
हे शुम्भ ! चित्तमें तेरे अब, पैदा क्यों ऐसा शूल हुआ ? ॥
तेरे कर्मों के लायक ही, यह दण्ड तुझे अनुकूल हुआ ।
नारी से हार मिली है जो, यह सचमुच ही माकूल हुआ ॥
अब तक जो अबलायें हरकर, तूने आनन्द मनाया है ।
अब सँभल शीघ्र ही उन सबके, बदले का अवसर आया है ॥
वह समय गया जब घरघर में, तू पाता था ऐसी नारी ।
जो छुई मुई की तरह लिपट, कुम्हला जाती थी सुकुमारी ॥
अबतो माँ दुर्गा देवी ने, वह सच्ची राह दिखाई है ।
जिसपर चलने से दुनिया की, कीरति है और बड़ाई है ॥
ललना वृन्दों की उन्नति का, अब सुन्दर अवसर आया है ।
उन सब को जग की जननी ने, कल्याण-मार्ग दिखलाया है ॥

यही मार्ग वह मार्ग है, जिसपर चलकर आज ।
भारत की कुलदेवियाँ, रक्खेंगी निज लाज ॥

रमणियाँ देश की हाथों में, अब मेंहदी नहीं रचायेंगी ।
दुष्टों के लोहू से रँग कर, अब सुन्दर उन्हें बनायेंगी ॥
जो कभी न बाहर निकली थीं, वे अब रण करने जावेंगी ।
चम चम तलवारें चमकाकर, दुष्टों को मार भगावेंगी ॥
अबला अबतक कहलाती थीं, उनमें अब ऐसा बल होगा ।
जिससे इन नीच मनुष्यों का, सारा प्रयत्न निष्फल होगा ॥
संध्या तो बीत चुकी ही थी, अब रजनी का भी नाश हुआ ।
अबतो भारतमें ऊषा का, अति मंजुल अरुण प्रकाश हुआ ॥
इसलिये जुले हो शुम्भराज, क्यों अपना नाश कराने पर ।
है व्यर्थ तड़पना उल्लू का, उज्ज्वल ऊषा के आने पर ॥

गाना

नारियाँ आयेंगी अब, नाम कमाने वाली ।
खुदबखुद अपनी वो इज्जत को बचाने वाली ॥
होगा ऐसा न कोई उनसे जो अब रार करे ।
होंगी दुर्गा सी वे, दुर्गा की कहाने वाली ॥
वह कलाई जिसे चूड़ी ही सदा भाती थीं ।
होगी अब युद्ध में, तलवार चलाने वाली ॥
अबलो देखेंगे सभी खोल के आंखें "ज्वाला" ।
काम कर सकती हैं क्या अबला कहाने वाली ॥

—०—

शुम्भराज जब चुप होगये, कर वाणी उच्चार ।
तब निज मन में शुम्भ वह, करने लगा विचार ॥
"जो कुछ यह वाणी कहती है, वह सब सच है अक्षर अक्षर ।
मेरे सैनिक क्यों हार गये, इस अबला नारी से लड़कर ॥

यह कमी नहीं होसकती है, नारी कोई मामूली सी ।
कुछ तो है जिसके बलपर यह, फिरती है फूली फूली सी ॥
भारत में गर आगे चलकर, होवेंगी ऐसी ही नारी ।
तो फिर मेरे इन दूतों की, जावेगी रोज़ी ही मारी ॥
अँधियारी अगर न होगी तो, हम कहाँ विचरने पावेंगे ।
अबला गर बलवाली होंगी, तो कैसे हरने पावेंगे ॥
इसलिये न जो जगपावें ये, तो हम लोगों का हित होगा ।
वरना इनके जग जाने से, असुरों का घोर अहित होगा ॥

हम से योद्धा वृन्द के, सुख विनोद के काज ।
उठे न भारतवर्ष का, निर्बल नारि समाज ॥
जैसे वे सोती रहीं, इतने दिनतक आप ।
त्यों अब भी सोती रहें, खो कर तेज प्रताप ॥

पर ये सब उल्टे ही खयाल, क्यों मेरे मन में आते हैं ।
मेरे समान बलवाले को, क्यों ये डरपोक बनाते हैं ॥
रह रह कर नारी के बलका, मैं क्यों विचार यों करता हूँ ।
ऐसा बलशाली होकर के, क्या मैं अबला से डरता हूँ ॥
थोदा यह ख्याल हुआ है जो, अब उसे दूर करना होगा ।
चाहे जो कुछ होजावे पर, उस नारी को हरना होगा ॥
इन हाथों से उसका घमण्ड, सब चूर चूर करना होगा ।
या तो उसको ही पावेंगे, या फिर खुद ही मरना होगा ॥

कैसा है आश्चर्य जो, होकर मैं रणधीर ।
इस छोटी सी बात से, खोदूँ अपना धीर ॥

कैसे यह देवों का मण्डल, मुझको यों आज डराता है ।
ऐसी वाणी कहकर यह क्यों, नारी का भय दिखलाता है ॥

मेरा साहस, मेरी हिम्मत, मेरा बल वे क्या भूल गये ।
मेरी हुङ्कार और मेरा, क्या अतुल शौर्य वे भूल गये ॥
यदि ऐसा है तो फिर उनको, अपना वह बल बतला दूँगा ।
फिर से मैं सारी पृथ्वी को, आकाश तलक दहला दूँगा ॥
सर्वस्व लुटा दूँगा लेकिन, जाने पावेगा मान नहीं ।
या तो अपमान मिटा दूँगा, या तन में होगी जान नहीं ॥
जो काम न कुछ कर दिखलावे, वह तो कोई भी शान नहीं ।
जो उठ उठ करके दब जावे, वह कोई भी अरमान नहीं" ॥

गरज गरज कर इस तरह, वह दानव बलवान ।
अब आगे के युद्ध का, मनमें लाया ध्यान ॥
सब वीरों में श्रेष्ठ थे, जो दो सैनिक खास ।
उन्हीं चण्ड और मुण्डको, कहा बुलाकर पास ॥

"जाओ देखो हे चण्ड मुण्ड, वह कौन लड़ाका नारी है ।
मेरे ही हाथों से उसने, क्यों अपनी मौत विचारी है ॥
तलवार हमारी जो रण में, वीरों को मार गिराती है ।
अब नारी पर उठने में वह, लज्जा से सहमी जाती है ॥
पर यह लज्जा क्या लज्जा है, जो कायरता सिखलाती है ।
और इस लड़ने के अवसर पर, मुझको अति भीरु बनाती है ॥
तलवार ! तुम्हारी लज्जा को, अबतो मैं दूर भगा दूँगा ।
नारी भी अगर शत्रु हो तो, उसको भी मार गिराऊँगा ॥
अच्छा है अपनी इच्छा से, गर वह सुकुमारी आजावे ।
वरना मेरा है हुक्म कि वह, अपनी करनी का फल पावे ॥
जब अहङ्कार में भर करके वह, मरने पर ही है तुली हुई ।
तो मेरी भी तलवार तेज़, लड़ने के हित है खुली हुई ॥

"इसलिये हमारी आज्ञा है, हे चण्ड मुण्ड जल्दी जाओ ।
जीती हो चाहे मरी हुई, उस सुकुमारी को ले आओ ॥

गाना

ओ वीर जाओ जाओ, रणधीर जाओ जाओ ।
ओ चण्ड मुण्ड प्यारे, रणवीर जाओ जाओ ॥
उद्भट जो राह में हों, उनको मिटा बहाओ ।
निर्भय दिलों में अपने, धर धीर जाओ जाओ ॥
आपत्तियाँ तुम्हारी, गर राह रोकलें तो ।
पानी की तरह उनको, तुम चीर जाओ जाओ ॥
अपमान जो किया है नारी ने आज अपना ।
लेने को उसका बदला, रणवीर जाओ जाओ ॥

—o—

सुनकर दानवराज के, रोष भरे यों बैन ।
तने चण्ड और मुण्ड के, क्रोधित होकर नैन ॥
अपनी सेना साथ ले, वे दोनों रणवीर ।
फूल फूलकर गर्व से, पहुँचे माँ के तीर ॥
देखा उन दोनों ने गिरि पर, शोभावाली जगजननी को ।
भक्तों का भय हरनेवाली, सुखकरनी माँ दुख हरनी को ॥
वे वहाँ सिंह पर चढ़ी हुई, भक्तों का मोद बढ़ाती थीं ।
और शरच्चन्द्र की शोभा को, अपनी छवि से शरमाती थीं ॥
रह रह कर कभी बीच में जो, माँ मृदु मुसक्याती जाती थीं ।
सो मानों चारुचन्द्रमा से, अमृत की धार बहाती थीं ॥
मेघों सा सिंह गरजता था, रह रह कर क्रोधित हो मन में ।
माँ की तल्वार चमकती थी, जैसे बिजली चमके घन में ॥

इस ओर शरद् की शोभा थी, वर्षा का था उस ओर समा ।
जिसने देखा बस श्रद्धा से, चरणों में उसका चित्त रमा ॥
जिसने देखा देवि का, ऐसा रूप अनन्य ।
आँखें अपनी सफलकर, वहीं होगया धन्य ॥
पहले माँ को देखकर, झुँपे बराड के नैन ।
पर फिर उसने यों कहे, माता जी से बैन ॥
"सुन्दरी मानता हूँ मैं यह, तुम कोई सच्ची नारी हो ।
भय खाकर दब जानेवाली, दुर्बल चित की न कुमारी हो ॥
अबला होकर के भी तुमने, अति अद्भुत हिम्मत पाई है ।
जो जग के विजयी दानवसे, रण करने की ठहराई है ॥
जय पाकर थोड़ी सेना पर, तुम फूलो मत मन में ऐसा ।
क्या हुआ अभी अब देखोगी, दानवपति का बल है कैसा ॥
तुमसे गर मरा धूम्रलोचन, तो इसमें कौन बड़ाई है ।
थोड़ा सा जल पाकर के क्यों, छोटी सरिता उतराई है ॥
सरिता कितने ही पौधों को, दिनरात बहा ले जाती है ।
पर पर्वत से अड़ जाने पर, उसकी भी गति रुक जाती है ॥
"इस लिये धूम्रलोचन आदिक, पौधों को अगर बहाया है ।
तो रुको, न आगे बढ़ो आज, पर्वत यह आगे आया है" ॥
कहकर ऐसी बात जब, बराड हुआ खामोश ।
बोलीं तब वे देवि यह, मन में कर के रोष ॥
"मैं ऐसी कोई नदी नहीं, जो थोड़े में उतरा जाये ।
थोड़ा सा पानी पाकर भी, जिस में बहिया सी आजाये ॥
मैं तो वह बिजली हूँ दानव, जो एकबार यदि गिर जावे ।
तो पौधे क्या पर्वत तक को, टुकड़े टुकड़े कर बिखरावे ॥

होता गर यहाँ धूम्रलोचन, तो बतलाता मेरे बल को ।
कहता तुम से एक नारी ने, कैसे मारा दानव दल को ॥
वह तो मर गया, किन्तु अब कुछ, अपना पौरुष दिखलाओ तुम ।
हिन्दू कुलबाला के बल की, आओ कुछ थाह लगाओ तुम ॥
इन चूड़ीवाले हाथों में, देखोगे अब कितना बल है ।
बलवालों से भी बढ़कर के, यह हम अबलाओं का दल है ॥"

मौन हुई जब देवि वे, कह कर ऐसी बात !
क्रोधित हो तब चण्डिका, काँप उठा सब गात ॥
बारम्बार तलवार को, अपने कर में तोल !
माता जी से दुष्ट वह, बोला ऐसे बोल ॥

"मेरा मन तुझ पर जितना ही, ओ नारी दया दिखाता है ।
उतना ही तुझ में अहङ्कार, क्रम क्रम से बढ़ता आता है ॥
है किसे नहीं यह ज्ञात भला, भारत की कैसी नारी है ।
कहने को तो वह नारी है, लेकिन पशु तुल्य बिचारी है ॥
पति पिता पुत्र आदिक उसको, हर रोज़ दबाये रहते हैं ।
दासी की नाईं सदा उसे, परतन्त्र बनाये रहते हैं ॥
वह अबला भीरु कहाती है, ऊँचा दर्जा नहिं पाती है ।
तप-हरी दुख-करी कलह-करी, मति-हरी बखानी जाती है ॥
जो नारी ऐसी नारी है, उस से क्या होना जाना है ।
आश्चर्य मुझे यह होता है, उस नारी ने रण ठाना है" ॥

उसके ऐसे बचन सुन, बोलीं यह वे देवि ।
जगत जननि मंगलकरनि, विश्वभरनि सुरसेवि ॥

"नारी अपने घर वालों से, नीचा पद कभी न पाती है ।
नर से पहले इस दुनिया में, नारी ही पूजी जाती है ॥

नारी सच पूछो तो नर की, सहचरी सदा कहलाती है ।
और कभी कभी तो उससे भी, वह ऊँचा आसन पाती है ॥
होते हैं भक्त धन्य अब भी, गौरीयुत शङ्कर का जप कर ।
और धन्य होगये महादेव, श्री अर्द्धाङ्गेश्वर कहला कर ॥

कहाँ घटा इस देश में, ललनाओं का मान ।
नारी नर से प्रथम ही, पाती है सम्मान ॥
आगे भी होगा यही, उनका भाग्य विशाल ।
वे ही ऊँचा करेंगी, भारत भू का भाल ॥

अब तक पुरुषों ने नारी को, सिर आँखों पर बिठलाया है ।
उनका सम्मान बचाने को, कितना ही कष्ट उठाया है ॥
गौरी जब जलीं पिता के घर, तब अपना ज्ञान ध्यान खोकर ।
कन्धे पर उनका शव लेकर, घूमे थे शिव पागल होकर ॥
अब आगे जब श्रीकाली का, वह रूप दिखेगा प्रलयङ्कर ।
तब करने को प्रसन्न उनको, लोटेंगे चरणों में शङ्कर ॥
नारी के लिये राम रघुवर, लङ्का में प्रलय मचावेंगे ।
नारी के लिये वीर पाण्डव, द्वापर में शस्त्र उठावेंगे ॥
नारी की रक्षा करने को, नर अपने प्राण गँवावेंगे ।
मर जावेंगे पर मर कर भी, वे सदा अमर कहलावेंगे ॥
सब यही कहेंगे अब आगे, चाहे जो कुछ भी होजाये ।
तन जावे पर माँ बहिनों की, इज्जत न कभी जाने पाये ॥
नारी को नीचा कहने में, इस लिये भूल यह तेरी है ।
वह सदा संगिनी सी रहती, नर की वह कभी न चेरी है ॥

गाना

पूजी गई हैं हर घड़ी, इस देश में नारी ।
इज्जत से उनकी बढ़गई इज्जत भी हमारी ॥
सोने से इनके भाग भी हम सब के सो गये ।
जगने से इनके जाग गयी जाति भी सारी ॥
जब जब ये उठीं हिन्द भी "ज्वाला" उठा तभी ।
दुर्गा ही की तरह हैं ये दुर्गा की दुलारी ॥

माँ के ऐसे बैन सुन, बंदी हृदय में पीर ।
गुस्से से तब चण्ड का, काँपा सकल शरीर ॥
फिर बोला वह "ओ नारी तू, करती है क्यों घमण्ड इतना ।
क्या नहीं जानती चण्ड वीर, बलशाली है प्रचण्ड कितना ॥
कैसी मति तुझ में आई है, जो ऐसी बातें करती है ।
दानवपति से रण करने में, तू मन में ज़रा न डरती है ॥
खामोश न क्यों तू रहती है, जब काल शीशपर आया है ।
क्यों चिड़िया बहुत बहकती है, जब बाज़ आज मँडराया है ॥
जो झुकते आँधी के आगे, वे ही पौधे बच पाते हैं ।
पर जो तन तन कर खड़े हुए, वे वृक्ष सभी गिर जाते हैं ॥
इस लिये गिरेगी तू जल्दी, जो आज व्यर्थ यों तनती है ।
अपने ही हाथों से अपनी, हालत गिरती और बनती है॥"
इतना कहकर दुष्ट वह, करके गर्जन घोर ।
अपनी सेना के सहित, दौड़ा माँ की ओर ॥
धनुष बाण लेकर कोई, कोई ले तलवार ।
उन्हें पकड़ने के लिये, सभी हुये तैयार ॥

सच है जो जैसा होता है, वह वैसी करनी करता है।
और आगे चलकर वैसे ही, करनी के फल भी भरता है॥
सज्जन अपनी सज्जनता ही, हरदम सब को दिखलाता है।
दुर्जन अपनी दुर्जनता से, उत्पात अनेक उठाता है॥
यदि माता के उपदेशों को, सुनता न घमंड-अभिमानी था।
तो इस में उसका दोष नहीं, आखिर को वह अज्ञानी था॥
अच्छे उपदेशों के द्वारा, मूर्खों को होता चेत नहीं।
बरसे यदि अमृत की धारा, तो भी फलता है बेत नहीं॥
क्या कभी ठहरने पाता है, पानी एक चिकने से घट पर।
दूजा न रंग चढ़ पाता है, कोई भी काले से पट पर॥

जब उस दानव घमंड की, मृत्यु आगई पास।
आँखे रहते भी नहीं, देखा उसने नाश॥

जिसके मरने का समय कभी, बिलकुल क़रीब आजाता है।
उसका तो ज्ञान ध्यान सारा, पहले ही से हर जाता है॥
क्या अच्छा और बुरा क्या है, क्या उचित और क्या अनुचित है।
कुछ समझ नहीं वह पाता है, किसमें हित किसमें अनहित है॥
मरने के पहले इसी लिये, दैत्यों की बुद्धि गई मारी।
जो जगजननी जी को जाना, उनने मामूली सी नारी॥
माता की शोभा देख देख, सबके सब मन में हर्षाये।
लेकिन उनके ही हाथों में, वे काल न अपना लखपाये॥
मायामयि की माया ने तो, अन्धा सा उन्हें बनाया था।
उनकी आंखों के आगे तो, एक परदा भ्रम का छाया था॥
उन सबने बुरी भावना से, जिन माता जी को प्यार किया।
उन माता हीने आखिर को, उन दुष्टों का संहार किया॥

सच कहा है कहने वाले ने, दुनिया धोखे की टट्टी है ।
अमृत विष होता कहीं, कहीं, सोना होजाता मिट्टी है ॥
इस लिये मूर्ख मानव नाहक़, जग की ममता में सनता है ।
जिसपर हम प्यार दिखाते हैं, वह काल हमारा बनता है ॥

गाना

प्यार तू किसको करता है ।
तेरा कौन यहाँ इस जगमें, जिसपर मरता है ॥ प्यार तू० ॥
प्यार दिखाता है दीपक पर, कैसा अन्ध पतङ्ग ।
पर बदले में झुलसाता वह, उसके सारे अङ्ग ॥
इसी में वह जल मरता है ॥ प्यार तू० ॥
बादल जल बरसा कर पहले, दिखलाता है प्यार ।
पर फिर वज्र गिराकर वह ही, करता है संहार ॥
नाश दुनिया का करता है ॥ प्यार तू० ॥
प्यार दिखाता है फूलोंपर, दौड़ दौड़ कर भौंर ।
पर बदले में काँटों से वह, छिद जाता किस तौर ॥
नष्ट अपना तन करता है ॥ प्यार तू० ॥

—०—

माँ के प्रति वे दुष्ट सब, दौड़े कर उल्लास ।
मानो सबके सब स्वयं, चले मौत के पास ॥
देवी जी ने जब लखी, दुष्टों की यह चाल ।
गुस्से से तब होगयीं, उनकी आंखें लाल ॥
गुस्से से जगजननी जी की, हो उठीं लाल दोनों आंखें ।
प्रज्वलित हुई अंगारों सी, वे अति कराल दोनों आंखें ॥
दोनों भौंहें माता जी की, तन तन कर धनुषाकार हुईं ।
और तेज़ नज़र भी बाणों सी, दुष्टों के दिल के पार हुई ॥

दुष्टों की चालें देख देख, माता का मुँह तमतमा उठा ।
मानों जग का तम हरने को, पर्वत पर रवि खुशनुमा उठा ॥
उनको विलोक कर दैत्य सभी, उल्लू की तरह मलीन हुये ।
पर हर्षित होकर देव सभी, उनके चरणों में लीन हुये ॥
दुष्टों का वधकर देवों को, नित नवजीवन देने वाली ।
माता की मूर्ति मनोहर थी, अमृत विष दोनों की प्याली ॥
इस ओर अगर सुरमण्डल का, जगजननी मोद बढ़ाती थी ।
तो उधर दुष्ट दानवदल की, नानी सी मरती जाती थी ॥

गरजीं जब माँ रोषसे, कर गर्जन गंभीर ।
काला तत्क्षण होगया, उनका सकल शरीर ॥

उनके ललाट से निकलीं फिर, देवी एक काले रँग वाली ।
काली थीं इसीलिये जग में, आकर कहलाईं वे काली ॥
जैसा था उनका नामघोर, वैसा स्वरूप भी पाया था ।
दुनिया में वैसा रूप कभी, नज़रों के तले न आया था ॥
मुण्डों का हार गले में था, हड्डी के आभूषण तन में ।
बिजलियाँ खेलती हों मानो, काजल केसे काले घन में ॥
उनके शरीर पर हाथी की, जो काली खाल सुहाई थी ।
वह मानो काली रजनी में, घनघोर घटासी छाई थी ॥
उनकी तलवार चमकती थी, रहरहकर विद्युन्माला सी ।
लपलपकर जीभ लपकती थी, आगी की जलती ज्वालासी ॥
यह वेश देखकर डरे न जो, ऐसी किसकी दृढ़ छाती थी ।
उसका खयाल तक करने से, कल्पना काँप सी जाती थी ॥

माँ काली को देखकर, दहला दानववृन्द ।
देवों के मन में हुआ, किन्तु अतुल आनन्द ॥

बड़ा शीघ्रता के सहित, दुष्टों का सन्ताप ।
शङ्का से उन सबों के, उठे चित्त भी काँप ॥
डर कर उन दुष्टों ने मनमें, देखा उन माता काली को ।
असुरों को मार मार करके, जग को सुख देने वाली को ॥
देखा उनने मानों नभपर, घनघोर घटासी छाई है ।
या उनका भाग्य सूर्य ढकने, रजनी सी कोई आई है ॥
उनको विलोक कर दुष्ट सभी, जल्दी कमलों से कुम्हलाये ।
मुँद गये नैन उनके ऐसे, जो फिर न कभी भी खुलपाये ॥
माता का रूप देखकर के, दुष्टों में भय सञ्चार हुआ ।
लेकिन अपने दिन फिरे देख, देवों को हर्ष अपार हुआ ॥
भावी सुख की आशा में वे, अपना सब दुःख शोक खोकर ।
माँ की स्तुति करने लगे सभी, अपने मनमें हर्षित होकर ॥

गाना

करुणामयि ! इतनी करुणा हम पर करदो ।
हम सबके सारे कष्ट शीघ्र तुम हरदो ॥
हम दीन हीन असहाय, और निर्बल हैं ।
बलवैभव से हैं हीन, और बेकल हैं ॥
दिन रात सताते हमको दानव दल हैं ।
बढ़ रहे हमारे दुःख, देवि ! पल-पल हैं ॥
वाञ्छित फल देकर सुख से सब मन भरदो ।
हम सब के सारे कष्ट शीघ्र तुम हरदो ॥
कहदो हम कब तक, ऐसे दुःख उठायें ।
कबतक माँ ! इन दुष्टों से हम भय खायें ॥
कबतक तेरे बच्चे, परतंत्र कहायें ।
कहदो माँ ! कब तक, हम अपना दुख गायें ॥

माँ ! उठो हमारी विपदा सभी कतर दो ।
हम सब के सारे कष्ट शीघ्र तुम हरदो ॥
फिर से हम सबका सोया भाग्य जगाओ ।
माँ उठो शीघ्र, दुष्टों को मार भगाओ ॥
खोई स्वतंत्रता फिर से हमें दिलाओ ।
माँ ! चलो शीघ्र अब देर न और लगाओ ॥
असुरों का यह सौभाग्य मेट कर धर दो ।
हम सब के सारे कष्ट शीघ्र तुम हरदो ॥

—०—

सुरगण जब चुप होगये, कर यह स्तुति उच्चार ।
माँ काली तब चित्त में, क्रोधित हुई अपार ॥
वे बोलीं "आह समय तेरी, लीला न समझ में आती है ।
इस लीला के आगे सबकी, गति मति भी मारी जाती है ॥
जो सज्जन और साधुजन हैं, वे सब तकलीफ़ उठाते हैं ।
पर दुर्जन और दुष्ट जो हैं, वे कैसी मौज उड़ाते हैं ॥
सरसब्ज़ पाप का पौदा है, सूखी पुण्यों की क्यारी है ।
बलिहारी है बलिहारी है, ऐसे युग की बलिहारी है ॥
दुर्जनता गर इस दुनिया में, ऐसे ही मौज उड़ावेगी ।
तो सज्जनता फिर काहे को, अपना स्वरूप दिखलावेगी ॥
दुर्जन यदि यों सुखपावेंगे, सज्जन गर कष्ट उठावेंगे ।
तो कुछ दिन में ऐसा होगा, सज्जन ही नज़र न आवेंगे ॥
इसलिये उचित जो है जगमें, बस वह ही काम करूँगी मैं ।
दुर्जन का शीघ्र दमन करके, सज्जन का कष्ट हरूँगी मैं ॥
दुष्टों का अत्याचार और, सब अनाचार हट जावेगा ।
पृथ्वी पर फिर से एक बार, वह शान्ति राज्य छा जावेगा ॥

अबतक जो रहे परतंत्र देव, वे फिर स्वतंत्र होजावेंगे ।
उन पर यह दैत्यों के मण्डल, अब राज्य न करने पावेंगे ॥
माता ने जब यों कहे, मनमें अपने बैन ।
गुस्से से तब जल उठे, उनके दोनों नैन ॥
देवों का दुख देख वे, ऐसी हुई अधीर ।
काँपा मारे रोस के, उनका सकल शरीर ॥
पहले ही महा भयङ्कर थीं, पर अब ज़्यादा विकराल हुई ।
आंखें पहले थीं लाल किंतु, अब जलकर ज़्यादा लाल हुई ॥
दुष्टों पर क्रोधित होने से, माँ की करालता और बढ़ी ।
थी गुर्वकड्डू पहले ही से, पर अब तो थी वह नीम चढ़ी ॥
गुस्से से काँप काँप करके, काली वे और हुई काली ।
मानों काली अँधियारी में, छाई हो घोरघटा काली ॥
किस दानव में यह हिम्मत थी, जो उन्हें देखकर खड़ा रहे ।
है कौन छेड़कर नागिन को, जो उसके सम्मुख अड़ा रहे ॥
काली का रूप देखकर के, दानव मनमें भयभीत हुए ।
पर उन्हें देखकर देवों के, मङ्गलकर नैन पुनीत हुए ॥
देव सभी हर्षित हुये, माँ का रूप निहार ।
पर दैत्यों के चित्त में, भय का हुआ प्रसार ॥
देख देख कर देवि का, वह स्वरूप विकराल ।
दानवगण सब हो उठे, भय कातर बेहाल ॥
काली को देख देखकर के, वे सब यह ख़्याल लगे करने ।
क्या यह रजनी सी आई है, अपनी जीवन संध्या करने ॥
अथवा हमको सम्मूल ढाने, आँधी कोई मँडराई है ।
या उनका भाग्य सूर्य्य ढकने, घनघोर घटा सी छाई है ॥

कहने का मतलब है कि दुष्ट, वे सब जो हर्षित थे पहले ।
अब माँ को देख देख उनके, दिल के कोने कोने दहले ॥
सम्भव है कहाँ कि देख उन्हें, वे दुष्ट न मनमें भय खायें ।
सिंहिनी सामने आजाये, और स्यार न फिर भी घबरायें ॥

इधर हो रहे थे जभी, ये दानव दिलगीर ।
उधर देवि ने की तभी, एक गरज गंभीर ॥
जलमें थलमें गगन में, वह ध्वनि गई समाय ।
मानों नभ से हो गिरा, वज्र कहीं घहराय ॥

वह गरज प्रलय की गरज हुई, उसको सुनकर सब काँप उठे ।
देवों के दल हरषे लेकिन, दानव शङ्का से काँप उठे ॥
तरुवर डोले, भूधर डोले, पृथ्वी सारी डगमगा गई ।
वह गरज गरज कर एक बार, कानों के पर्दे हिला गई ॥
ऊँची ध्वनि से इस भूतल के, सारे कोने कोने भरके ।
गरजी कितनी ही बार गरज, गिरिखण्डों से टक्कर करके ॥

गाना

जब किया देवि ने क्रोधित हो रणगर्जन ।
दुष्टों में पैदा हुआ घोर हृत्कम्पन ॥
पृथ्वी डोली, तब डोले पर्वत डोले ।
अहिपति डोले, दिग्पालों के दल डोले ॥
जब चेतनस्थावर जङ्गम सारे डोले ।
मानों विभुने सब साज प्रलय के खोले ॥
दुनियाँ भी सारी लगी काँपने तत्क्षण ।
दुष्टों में पैदा हुआ घोर हृत्कम्पन ॥

उसको सुनकर के मौन हुआ पक्षीदल ।
कलकल रव अपना छोड़ हुआ वह बेकल ॥
वन उपवन में भी छाई ऐसी हल चल ।
तरुगण भी हिलना छोड़ होगये निश्चल ॥
भयभीत होगये नदी, शृङ्ग निर्जनवन ।
दुष्टों में पैदा हुआ घोर हृत्कम्पन ॥
उस रणगर्जन को क्या कोई कहपावे ।
उसको कहने में गति मति सभी भुलावे ॥
वाणी उसको सुन मौन तुरत होजावे ।
मसि सूखे, जड़ लेखनी वहीं रुकजावे ॥
क्या कोई करपावेगा उसका वर्णन ।
दुष्टों में पैदा हुआ घोर हृत्कम्पन ॥

गाना

माँ ने जब किया हुंकार ।
डिग उठे जड़जीव सारे, हिल उठा संसार ॥ माँने जब किया ॥
शेष भी निज चित्त में हो, क्षुब्ध बारम्बार ।
हिल उठे और सह न पाये, भूमितल का भार ॥ माँने जब किया ॥
दानवों की भाग्य नौका, पड़गई मँझधार ।
किन्तु सब सुरमण्डली का, हुआ बेड़ा पार ॥ माँने जब किया ॥
स्वर्ग में बहने लगी फिरसे सुखों की धार ।
देव हरषे, फूल बरसे, हुई जय जयकार ॥ माँने जब किया ॥
जिस गरज ध्वनि पर लिखीं, ये पंक्तियाँ दोचार ।
दुःख "ज्वाला" के सभी वह, शीघ्र ही दे टार ॥ माँने जब किया ॥

—०—

यों उनकी उस गरज से, काँपा सब का गात ।
चलीं युद्ध के वास्ते, वे जगदम्बा मात ॥

माँ को आते देखकर, समझ गया वह चराड ।
आता है मानों कोई, उन पर विद्युत्खराड ॥
उन्हें देखकर डर गया, वह दानव समुदाय ।
जैसे रवि को देखकर, उल्लूदल डर जाय ॥
माँने भी दुष्टों में घुसकर, एक प्रलय मचादी भारी सी ।
उन सब पर पड़ने लगी वहाँ, शस्त्रों की मार करारी सी ॥
कितनों को हाथों से लेकर, मुँह का एफ कौर बना डाला ।
कितनों को रौंद रौंद करके, पैरों से पिच्ची कर डाला ॥
कितने ही भूपर लोट गये, आहत होकर तलवारों से ।
और कितने ही तिलमिला उठे, माता के शस्त्र प्रहारों से ॥
कितनों के बाल पकड़ करके, माँने वह दिया वहाँ झटका ।
थोड़े ही अरसे में उनने, लाखों को पृथ्वी पर पटका ॥
जितने दानव दिखपड़े वहाँ, उन सब ही की संहार किया ।
जो आया उसको माता ने, चट यम के घाट उतार दिया ॥
माँके सन्मुख भाला गोया, यमही के सन्मुख आना था ।
जो इनसे लड़ा वहाँ रण में, उसका फिर कहाँ ठिकाना था ॥
रण में काली जी से लड़ना, था क्षुद्र बच्चों का खेल नहीं ।
उनके शस्त्रों की मारों को, सकता था कोई झेल नहीं ॥
माँ उस क्षण ऐसी दिखीं, उग्र और विकराल ।
नाच रहा हो युद्ध में, मानों काल कराल ॥
अथवा करने को वहाँ, दुष्टों का संहार ।
मृत्यु देवि हों कर रही अपना उग्र विहार ॥
माता क्या धाई दुष्टों पै, मानो बिजली गिरपड़ी कोई ।
या पवन झँकोरों से भिड़ने, पर्वत की माला अड़ी कोई ॥

काली थीं या खपटों वाली, वह कोई बन की आगी थी ।
जिसमें पड़पड़ करके जलती, दुष्टों की सैन्य अभागी थी ॥
इन नीच गीदड़ों के दल में, जब वे सिंहिनी सदृश आईं ।
तो दुष्टों की सब मगडलियाँ, भय से कम्पित हो घबड़ाईं ॥
दैत्यों की काली सेना में, जब अट्टहास कर देवि चली ।
उस समय दिखा ऐसा मानों, मेघों में चमक उठी बिजली ॥
या उनको छिन्नभिन्न करने, आँधी सी कोई आई हो ।
अथवा उनका विनाश करने, सिर मौत आज मँडराई हो ॥

माँ ने जब जब खल शुम्भ के, मारे शूर तमाम ।
तभी शत्रु की सैन्य में, मचा एक कोहराम ॥
रण की भीषण मारसे, जब न मिला कुछ त्राण ।
सेना सब भगने लगी, लेकर अपने प्राण ॥
कुछ क्षण हीमें होगया, खाली वह मैदान ।
जहाँ अभी कलरव मचा, वही हुआ वीरान ॥
अभी गरजते थे जहाँ, एक एक से शेर ।
अब उसमें हो थे पड़े, बस लाशों के ढेर ॥

जो कुछ था बस देखने योग्य वह खासा एक नज़ारा था ।
वह रण का था मैदान या कि, रौरव का एक किनारा था ॥
थे कहीं किसी के हाथ कटे, और पैर किसी के कटे हुये ।
सिर कटी हुई लाशों से थे, कितने ही हिस्से पटे हुये ॥
शस्त्रों की मारों से कटकर, कोई था कहीं कराह रहा ।
कष्टों से बचने के खातिर, मरना था अपना चाह रहा ॥
थे पेट अनेकों के फूटे, आँतें हो आई थीं बाहर ।
मरने पर और भयङ्कर से, लगते थे वे काले निशिचर ॥

उनके काले काले तन से, बहतीं थीं लोहू की धारें ।
मानों कज्जलगिरि के ऊपर, बहतीं हों गेरू की धारें ॥

बन्द हुआ कुछ देर को, जब खलदल संहार ।
इधर शुरू तब होगया, एक और व्यापार ॥
मनुज मनुज में हो रहा, था अबतक संग्राम ।
पर अब पशुओं ने किया, शुरू युद्ध का काम ॥

जिस ठौर मनुजगण लड़ते थे, पशु वहाँ युद्ध करने आये ।
उस दानवदल की लाशों से, वे उदर वहाँ भरने आये ॥
बैठा समीप ही आंतों को, कोई सियार था नोच रहा ।
और किसी वीर की आंखों को, कोई कौवा था कोंच रहा ॥
उन मरे हुओं की देहों पै, लाखों चीलें मँडराती थीं ।
लड़लड़कर मुर्दा के तन को, वे नोच नोचकर खाती थीं ॥
मुर्दे खाने के लालच में, गिद्धों पर गिद्ध टूटते थे ।
मुर्दे खाना तो दूर रहा, पहले वे खुद ही लड़ते थे ॥
पहले जिस थलपर युद्ध हुआ, देवी का दानव मण्डल से ।
अब वहीं नीच पशुपक्षी सब, लड़ते थे मुर्दों के दल से ॥
थी वह भी एक लड़ाई और, यह भी तो एक लड़ाई थी ।
वह थी रणवीरों की पर यह, कायर की नीच लड़ाई थी ॥

रण में लड़कर मरना, वीरों को है योग्य ।
पर उनका उच्छिष्ट ही, कायर को है भोग्य ॥

पहले तो रण में लड़ कर ही, योद्धागण नाम कमाते हैं ।
पर पीछे से मैदानों में, कायरगण लूट मचाते हैं ॥
वे हैं जो ज़िन्दा वीरों के, शस्त्रों से शस्त्र मिलाते हैं ।
ये हैं जो मुर्दों के तन पै, अपना पौरुष दिखलाते हैं ॥

योद्धा, कायर दोनों नर हैं, पर भेद यही है पड़ा हुआ ।
योद्धा मर कर भी जीता है, कायर जीता भी मरा हुआ ॥
मर कर जीना किसको कहते, यह सीखो वीरकुमारों से ।
जीते रहकर मरना क्या है, यह सीखो नीच सियारों से ॥

गाना

जगत में वही वीर बलवान ।
जिसके लिये प्राण तज देना, बिलकुल है आसान ।
हम सब तो इस दुनिया में हैं, दो दिन के मेहमान ॥
आज गये तो कल पायेंगे, कोई दूजा स्थान ।
यही जानकर जो तजते हैं, प्राणों का भी ध्यान ॥
तन छोड़ें पर कभी न छोड़ें, "ज्वाला" अपनी आन ।
जगत में वही वीर बलवान ॥

—०—

वीर कभी मरता नहीं, जगमें किसी प्रकार ।
कायर मरता है यहाँ, पर कितनी ही बार ॥
वह मरा नहीं कहलाता है, जो हँस हँसकर मर जाता है ।
वह मरा नहीं कहलाता है, जो नाम अमर कर जाता है ॥
निज देश धर्म और जाती पर, जो न्यौछावर होजाता है ।
और मातृ-भूमि के चरणों में, जो अपना शीश चढ़ाता है ॥
कुल ललनाओं की इज्ज़त जब, जाने का मौक़ा आता है ।
तो जो प्राणों का मोह छोड़, पानी सा खून बहाता है ॥
ज़ुल्मी का ज़ुल्म न सहता है, सत्याग्रह पर अड़ जाता है ।
मर जाता है, कट जाता है, पर अपनी टेक निभाता है ॥
उसका शरीर तो जाता है, पर नाम अमर होजाता है ।
मरजाता है, पर मर कर भी, वह मरा नहीं कहलाता है ॥

मरजाने के बाद भी, हो अमरों में गराय ।
मरना उसका नाम है, वही मौत है धन्य ॥
कायर बनकर जो कहीं, जिये बरस दो चार ।
तो वह क्या है ज़िन्दगी, उस पर है धिक्कार ॥

कायर बनकर शरीर रक्खा, तो उस शरीर का काम नहीं ।
कुत्ते की तरह जिये तो क्या ? जीना कुछ उसका नाम नहीं ॥
"जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं ।
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं" ॥
अन्यायी का अन्याय देख, और अत्याचार निर्बलों पर ।
जो मौन रहे खामोश रहे, वह नीच नराधम है कायर ॥
वह खून नहीं इन मौकों पर, जिसमें न जोश तूफ़ान उठे ।
वह क्रोध नहीं जो दब जावे, जिसमें कुछ नहीं उफान उठे ॥
ज़िन्दगी अगर इस दुनिया में, काटी हमने गुलाम रहकर ।
तो वह जीना क्या जीना है, उस से तो मरना ही बेहतर ॥
अन्यायों से जो लड़े नहीं, है मोह प्राण का भरा हुआ ।
क्या खाक करेगा जीकर वह, जीता भी है वह मरा हुआ ॥
जो जन्मभूमि की सेवा से, डरकर पीछे हट जाता है ।
वह ज़िन्दा रहकर भी जगमें, हरदम मुर्दा कहलाता है ॥

गाना

ऐशो इशरत में कटी गर, जिन्दगी आराम की ।
व्यर्थ है वह हो न गर, अपने वतन के काम की ॥
हाय क्या जीना है यह, जीना अगर इसको कहें ।
इस तरह से गर कटी, तो जिन्दगी किस काम की ॥

एक दिन, आये हैं जितने, सब फना होजायेंगे ।
फिर अमर होजाये जो, कुछ फिक्र कर उस नाम की ॥
जो हुआ बुजदिल वही, "ज्वाला" जहाँ से मिट गया ।
फिक्र कर मौका न, आये इस बुरे अञ्जाम की ॥

—०—

दो कौड़ी का है अहो, ऐसा जीवन नीच ।
इससे तो अच्छी कहीं, लाखों दर्जे मीच ॥
जिये अगर तो क्या जिये, हो कायरता धाम ।
वीर सदृश गर जिये तो, जीना उसका नाम ॥
जीने मरने का सभी, अर्थ दिया समझाय ।
अब आगे की कथा को, सुनिये ध्यान लगाय ॥
चण्ड मुण्ड ने जब लखा, निज सेना का नाश ।
आये लड़ने के लिये, दोनों माँ के पास ॥
गरज गरज कर क्रोधसे, होकर काल समान ।
आया पहले सामने, चण्ड वीर बलवान ॥
उस समय क्रोध से जलजल कर, उसका शरीर था लाल हुआ ।
पहले ही था विकराल किन्तु, अब वह ज्यादा विकराल हुआ ॥
आते ही आते काली पै, आँधी सा वह पामर धाया ।
मानो गिरिखण्डों से कोई, बन का हिंसक-पशु टकराया ॥
पर उस दानव के धाने का, फल उसके ही विपरीत हुआ ।
माँता वैसी ही रहीं मगर, वह उन्हें देख भयभीत हुआ ॥
जब जब उसने डरते डरते, माता पै शस्त्र प्रहार किया ।
तबतब उनने हँसकर उनको, लक्षित कितनी ही बार किया ॥
इस तरह विजय पाने के जब, उसके सब व्यर्थ प्रयास हुए ।
तबतो मन ही मन में दानव, शोकाकुल और निराश हुए ॥

देखदेख कर यह दशा, दुष्ट चण्ड बलवान ।
झुँझला कर रचने लगा, महा घोर घमसान ॥
छोड़े काली देवि पर, उसने इतने बाण ।
बाणों ही का छागया, ऊपर एक वितान ॥
जिस ओर नज़र फिरजाती थी, ऊपर नीचे, दायें बायें ।
उस ओर घने दिखलाते थे, बाणों ही के बादल छाये ॥
दानवदल के कोदण्डों से, चलती थीं बाणों की धारें ।
मानो काले घनमण्डल से, झरती हों जल की बौछारें ॥
छाये कालीजी के तन पै, वे बाण ज्योति में जड़े हुए ।
मानों बिजली के टुकड़े हों, काले बादल में पड़े हुए ॥
अथवा धूयें के मण्डल में, चिंगारी जैसे चमकी हों ।
या घोर अमावस में जैसे, जुगनू दम दम कर दमकी हों ॥
बरसाये जब चण्ड ने, माँ पै इतने बाण ।
तभी सभी सुरवृन्द के, सूखे भयसे प्राण ॥
देखदेख कर चण्ड का, यह बल, विक्रम, जोश ।
लगे काँपने देवगण, उड़े सभी के होश ॥
देखा देवों को जभी, यों होते बदहोश ।
माता के मुखपर तभी, झलक उठा कुछ रोष ॥
जिसदम दुष्टों की करनी पै, माता को थोड़ा रोष हुआ ।
उससमय काँपकर शङ्का से, दानव का ठण्ढा जोश हुआ ॥
अबतक जो बहुत चहकता था, वह दानवदल खामोश हुआ ।
और देवों की मण्डलियों में, जयमां, जयमां का घोष हुआ ॥
अब तक सुरज के आगे एक, काला बादल सा छाया था ।
जिसने उसकी उज्वलता को, थोड़ा सा मन्द बनाया था ॥

पर अब जब क्रोधित हो मनमें, वह सूरज ज़रा प्रचण्ड हुआ ।
तो वह बादल का टुकड़ा भी, जल जल कर सत्वर खंड हुआ ॥
मतलब यह है, जब माता के, कुछ नैन क्रोध में चूर हुए ।
तो दुष्ट चण्ड के बाण सभी, जल जलकर के काफूर हुए ॥
आगी जब तक कुछ ठंडी है, तब तक वह सब सहलेती है ।
पर जहाँ वही कुछ तेज़ हुई, सब जला खाक कर देती है ॥
ज्योंही काली ने क्रोध किया, त्योंही वे बाण हटे ऐसे ।
सूरज की किरणों के आगे, अँधियाला घोर कटे जैसे ॥
काट चुकीं जब कालिका, दुष्टों का शर जाल ।
तब अस्तुति करने लगे, सुरगण हो नतभाल ॥

गाना

जय माँ ! जय मङ्गल करनि देवि ।
जय जय सुरनर-मन हरनि देवि ॥ जय माँ० ॥
सोहत शरीर पर अस्थि जाल ।
पहिरे सुकण्ठ में मुण्डमाल,
अतिशय कराल, दारुण विशाल,
दीपत ललाट पर नेत्र लाल,
सुख भूतल भर में भरनि देवि ॥ जय माँ० ॥
हम हैं सब बल वैभव विहीन,
अति कान्ति हीन, द्युतहीन दीन,
इन दुष्टों को कर आयु क्षीण,
भरदो हममें जीवन नवीन,
अयि ! सङ्कट सब के हरनि देवि ॥ जय माँ० ॥
होजावे खल-दल का संहार,
मिट जावे सारा भूमिभार,
होवे अपार, सुख का प्रसार,
"ज्वाला" कहता यह बारबार,
फिर से प्रसन्न हो धरनि देवि ॥ जय माँ० ॥

सुने जभी सुरवृन्द के, ऐसे आरत बैन ।
हुई क्रुद्ध वे कालिका, तने क्रोध से नैन ॥
दुष्टों का अन्याय सुन, हुआ उन्हें संताप ।
उनके वध के वास्ते, शीघ्र सँभाला चाप ॥

पहले भारी टङ्कोर हुई, फिर धन्वा से एक तीर चला ।
मानों कड़कड़ करके कोई, बिजली का टुकड़ा चीर चला ॥
माता ने चण्ड शूरमा को, मारा एक बाण करारा सा ।
जाते ही उसने दानव के, तन में चीरा एक आरा सा ॥
जब तक सँभले २ तबतक, वह शर का वहीं शिकार हुआ ।
रोका कितना ही उसने पर, वह उसके दिलके पार हुआ ॥
गिरते गिरते भी उसने एक, माता पर तीखा वार किया ।
पर माता ने हँसकर उसको, पहले ही सा बेकार किया ॥
इस ओर शस्त्र बेकार हुआ, उस ओर भूमि पै चण्ड गिरा ।
मानो बिजली के गिरने से, पर्वत का कोई खण्ड गिरा ॥
संहार चण्ड का होने से, दुष्टों में हाहाकार हुआ ।
पर देवों की मण्डलियों में, काली का जयजयकार हुआ ॥

जब देवी की मार से हुआ चण्ड गत प्रान ।
आया लड़ने शस्त्र ले, मुण्ड वीर बलवान ॥
आने को आया मगर, रह न सका वह वीर ।
वह भी जल्दी ही गया, दुष्ट चण्ड के तीर ॥
अब सब खल भगने लगे, लेकर अपने प्राण ।
पर देवी के बाण से, मिला न उनको त्राण ॥

जो आये थे युद्ध में, सबका हुआ विनाश ।
जो काली से लड़े वे, गये काल के पास ॥
दोनों खल के शीश को, काटा हो बेपीर ।
फिर लेकर के गयीं वे, उन्हें कौशिकी तीर ॥

बोली, "लो माँ स्वीकार करो, यह भेंट तुम्हें मैं लाई हूँ ।
जो कुछ भी तुमने सौंपा था, वह सभी काम कर आई हूँ ॥
अब तो प्रसन्न हो ओ माता, लो मैं बलिदान चढ़ाती हूँ ।
पानी की जगह खून ही का, मैं तुम्हें अर्घ्य दिलवाती हूँ ॥
इन दुष्टों का तो नाश हुआ, अब इनके वधसे खुश होकर ।
उन शुंभ निशुंभ दानवों को, मारो अब माँ ! रण में सत्वर ॥
जबतक उन दोनों दुष्टों का, मातेश्वरि नहीं नाश होगा ।
तबतक सच कहती हूँ जगमें, पापों ही का विकाश होगा ॥
इसलिये विनय यह मेरी है, हे देवि ! न कुछ अब और करो ।
जैसे हो जल्दी ही दोनों, दुष्टों का अब संहार करो ॥
गर वे दोनों मिट जावेंगे, तो पाप सभी मिट जावेंगे ।
उनके मरजाने से माता, सब धर्म अमर होजावेंगे ॥ "

काली की यह बात सुन, बोल उठीं माँ बैन ।
"कैसे माँ को चैन हो, जब सुत हों बेचैन" ॥

क्यों ऐसी चिन्ता करती हो, छोड़ो चिन्ता का काम नहीं ।
जब सुरगण ही सङ्कट में हैं, तो फिर मुझको आराम नहीं ॥
सब देखरही हूँ मैं जैसा, खल अत्याचार मचाते हैं ।
जैसे वे अपने हाथों से, देवों को रोज सताते हैं ॥
कुछ दिन में देखोगी काली ! वे सब खुद ही मर जावेंगे ।
कैसे पतङ्ग जीसकें भला, आगी तक वे गर जावेंगे ॥

मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हुई, जो तुमने ऐसा काम किया ।
इन दुष्टों का वधकर तुमने, अबलाओं का है नाम किया ॥
बतलाया तुमने दुनिया को, नारी का अबला नाम नहीं ।
परदे में घुलघुल कर मरना, नारी मण्डल का काम नहीं ॥
वे तो दुनिया की माता हैं, फिर क्यों वे शक्ति विहीन बनें ।
क्यों वे दुष्टों से भय खायँ, बल रहते भी क्यों दीन बनें ॥
भारत है चण्ड मुण्ड इससे, "चामुण्डा" तुम कहलाओगी ।
जो चरित तुम्हारा पढ़ें सुनें, उनके सब ताप मिटाओगी" ॥

यह सुन काली जी गईं, लज्जा से सकुचाय ।
पर फिर यों कहने लगीं, हाथ जोड़ शिरनाय ॥

"माँ ! मैं क्या, मैं तो साधन थी, तुमने ही सारा काम किया ।
मुझमें अपना बल देकर के, तुमने है मेरा नाम किया ॥
जिनकी तुम सबला माता हो, वे क्या अबला कहलावेंगी ।
दुर्गा की प्यारी दुहितायें, क्या निज आदर्श भुलावेंगी ॥
जिस पर तुम करुणा करती हो, वह ही होता है बलशाली ।
फिर अपनी ही कन्याओं की, देखोगी कैसे पामाली ॥
इन कन्याओं के सीने पै, चलता समाज का आरा है ।
फिर भी तुम नहीं बोलती हो, यह कैसा हृदय तुम्हारा है ॥
जो कभी न तुमको ध्याते हैं, वे दुष्ट सभी सुख पाते हैं ।
पर जो कि तुम्हारे सेवक हैं, वे रो रो दिवस बिताते हैं ॥

बहुत हुआ अब तो करो, दुनिया का कल्यान ।
माता तेरी शक्ति का, किसे नहीं है ज्ञान ॥

गाना

मिला न जिसे तुम्हारा दान, ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है।
है वह मूर्ख महा अज्ञान,
अविवेकी जड़मति नादान,
जो तुमको अबला ही जान,
कर घमण्ड देवे रणठान,
जो तुमसे भी हो बलवान, ऐसी कोई शक्ति नहीं है ॥ मिला न० ॥
होता उनका नहीं विकास,
पाते हैं वे हर दम त्रास,
विभव न आता उनके पास,
होता उनका शीघ्र विनाश,
वे जो तुमसे रहें उदास, जिनमें तेरी भक्ति नहीं है ॥ मिला न० ॥
कैसे हों उसके दुख दूर,
कैसे हों सब सङ्कट चूर,
कैसे हों धन से भर-पूर,
क्यों न सुखों से हों वह दूर,
जिसके मन मन्दिर में मात! तेरी कुछ आसक्ति नहीं है ॥ मिला न० ॥
माँ! अब दो ऐसा वरदान,
दुख का होजावे अवसान,
हो धर्मों का अभ्युत्थान,
"ज्वाला" जग का हो कल्यान,
तेरा करपावें गुणगान, ऐसी हममें शक्ति नहीं है ॥
मिला न जिसे तुम्हारा दान, ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है ॥

इति.

मङ्गलाचरण

जय माँ दुर्गे ! जय दुख हारिणि !

जय करुणामयि विश्वम्भरि माँ ! जयमंगल मयि, मंगलकारिणि !

लीला अमित ललित विस्तारिणि,
असुर निकन्दिनि, भक्त तारिणि,
जय दुख हारिणि, जय सुख कारिणि,
सौख्य सुधा सर्वत्र प्रसारिणि ॥ जय माँ दुर्गे० ॥

इतनी दया देवि दिखला दे,
हम सब का दुर्भाग्य मिटा दे,
दुख विनसा दे, सुख उपजा दे,
अयि, "ज्याला" के सङ्कट हारिणि ॥ जय माँ दुर्गे० ॥

रक्तबीज की लड़ाई

* कथा प्रारम्भ *

चण्ड मुण्ड का हो गया, जब रण में संहार।
गूँजा तब सुरधाम में, माँ का जय जयकार॥

जय के उस सुन्दर उत्सव में, डफ, घन्टे और मृदङ्ग बजे।
मन में उत्फुल्लित प्रमुदित हो, देवी ने मङ्गल साज सजे॥

विध्वंस देखकर दुष्टों का, सुर--मण्डल वह कृत कृत्य हुआ।
घर बाहर और वीथियों में, नर्त्तकियों का नवनृत्य हुआ॥

आनन्दित थे नर-नारि सभी, आनन्द का कोई अन्त न था।
आ गया वसन्त सुदिनवाला, दुर्दिनवाला अब हेमन्त न था॥

सजकर नाना भाँति से, वे सुरगण सोल्लास।
गये हिमालय शैल पर, देवि कौशिकी पास॥

देखा वे देवी दयामयी, जग की रक्षा करने वाली।
बैठी हैं सुन्दर आसन पर, सामने खड़ी हैं माँ काली॥

वाहन भी उनका विकट सिंह, उनके समीप ही टहल रहा।
अपनी गम्भीर गर्जना से, दुष्टों के दिल को दहल रहा॥

माँ के मुख की उजियाली से, सब ओर उजेला आया था।
मानो काली अँधियारी में, शशि बिम्ब उदय हो आया था॥
इसी समय संध्या हुयी, अस्त हुये दिननाथ।
प्रकटा प्राची में सुघर, चन्द्र चाँदनी साथ॥
मुखचन्द्र इधर था देवी का, उस ओर चन्द्र था अम्बर का।
वह था शृङ्गार रात भर का, यह था शृङ्गार हर पहर का॥
वह रजनीरञ्जन, रजनीकर, रजनी में सिर्फ चमकता था।
पर माता का यह सुन्दर मुख, उज्ज्वल दिन रैन दमकता था॥
विरही और विकल वियोगी को, नभचन्द्र नित्य दुख देता है।
पर माताजी का मुखमण्डल, सुख देकर दुख हर लेता है॥
कारे पखवारे में शशि की, उज्ज्वलता घटती जाती है।
पर माँ के मुँह की उजियाली, एकी-सी सदा सुहाती है॥
माता के इस रूप का, था न कहीं समरूप।
अपनी उपमा आपही, था वह रूप अनूप॥
वह रूप अनूप विलोकन कर, सुरगण आनन्द विभोर हुये।
मानो वे हर्षोत्फुल्ल सभी, उस शशि के चारु चकोर हुये॥
मछली को मानों नीर मिला, भौंरों ने मन्जु कमल पाया।
या तृषित पपीहे ने मानों, स्वाती में अमृत जल पाया॥
यह सहज नहीं है बतलाना, उनको कितना आनन्द हुआ।
उस दिव्य रूप का दर्शनकर, विकसित उनका मन अतङ्ग हुआ॥
प्रेम सहित कर जोरकर, वे सब सहित विधान॥
इस प्रकार करने लगे, माता का गुणगान॥
दुख शोक ताप संहारिणी माँ, सुखसौख्य शांति विस्तारिणि माँ।
सङ्कट भय क्लेश निवारिणि माँ, दुखहारिणि माँ सुखकारिणि माँ॥

जीवन के सूखे विरवे को, जीवन जल देने वाली माँ।
सङ्कट में पड़े मनुष्यों के, सङ्कट हर लेने वाली माँ॥
भण्डार शक्ति का तुझमें है, आगार ज्ञान का तुझमें है।
आचार आन का तुझमें है, उपकार ज्ञान का तुझमें है॥
तेरी कन्यायें जब आगे, तेरे चरित्र ये गायेंगी।
तो तेरी अद्भुत लीला पर, रह रह कर बल बल जायेंगी॥

❀ गाना ❀

बलवान अब बनेंगी, भारत की नारियाँ।
दुख देश का हरेंगी, भारत की नारियाँ॥
जो जो चरित किये हैं, तुमने श्यामली माँ।
वे ही चरित करेंगी, भारत की नारियाँ॥
जो पथ दिखाया तुमने, दुष्टों को मार करके।
सत्पथ वही गहेंगी, भारत की नारियाँ॥
गुणवान अब बनेंगी, फिर से सशक्त होंगी।
अबला न अब रहेंगी, भारत की नारियाँ॥
भारत का फिर से "ज्वाला" होवेगा बोलबाला।
दुर्गा सी जब बनेंगी, भारत की नारियाँ॥

सुन सुन कर तेरी गाथा को, उत्साह हृदय में ला करके।
सङ्कट में शौर्य दिखायेंगी, अबला सबला कहला करके॥

विनती करके देवगण, बोले पुनि यह बात।
'शीघ्र शुम्भ का युद्ध में, करिये मात निपात'॥
सुन देवों के बैन ये, मुसकाईं वे मात।
फिर हँस कर कहने लगीं, वाणी यों अवदात॥

'हे देव वृन्द ! अब आगे मैं, ऐसी लीला दिखलाऊँगी।
बैठे बैठे ही दुष्टों का, इस जग में नाश कराऊँगी ॥
मैं दीपशिखा सी बैठी हूँ, और वे पतङ्ग से आयेंगे।
मेरी प्रचण्डता में पड़ कर, खुद ही जल कर मर जायेंगे ॥
मेरी माया के चक्कर में, दानव दल जब चकरायेगा।
तब आकर सेना सहित यहाँ, वह शुम्भ नष्ट हो जायेगा ॥
फिर से, हाँ फिर से हे देवों, सब क्लेश मिटाया जायेगा।
दुर्बल जो धर्म हो रहा है, वह सबल बनाया जायेगा ॥
फिर से पृथ्वी पर एक रोज, सुख-राज शान्ति का छायेगा।
बादल के हटने से सूरज, फिर दूनी प्रभा दिखायेगा ॥

आगे होगा युद्ध अब, महा घोर इस ठौर।
इससे मेरा इस समय, है विचार एक और ॥
पहले भेजूँ शुम्भ को, मैं अपना सन्देश।
फिर रण करने के लिये, साजूँ रण का वेश ॥
यह कह कर माँ ने कहे, शङ्कर से ये बैन।
देवों के भी देव हो, तुम्हीं देव दिन रैन ॥

तुम शङ्कर तुम्हीं शक्तिधर हो, तुम प्रलयङ्कर कहलाते हो।
शिव सुखकर नाम तुम्हारा है, इससे तुम पूजे जाते हो ॥
तुमने धारण की है अद्भुत, बाघम्बर और मुण्ड माला।
है चिता भस्म सारे तन में, सिर पर है सर्पवृन्द काला ॥
यह सब है महा अमङ्गल कर, पर तुम कहलाते मङ्गल कर।
विष पीकर अमृत देते हो, शिव नाम तुम्हारा है हे हर ॥
हो तुम सब तरह योग्य भगवन्, देवों का इतना काम करो।
शिव के करने वाले हे शिव, सार्थक अब अपना नाम करो ॥

जाओ जाकर उस दानव को, मेरा सन्देश सुना दो तुम।
उसके अनिष्ट का नीलकण्ठ, उसको कुछ ध्यान करा दो तुम॥
कहना कि पुरुष है वही पुरुष, जो नारी का सम्मान करे।
वह कभी न वीर कहाता है, जो नारी का अपमान करे॥
नारी का आदर करने से, वह आदर जग में पायेगा।
अथवा नारी ही के हाथों, दल बल से मारा जायेगा॥

समझा कर कहना उसे, शङ्कर सभी प्रकार।
रण करने का नारि से, तज दे शीघ्र विचार॥

नारी तब तक ही अबला है, जब तक वह दबकी रहती है।
जब तक कुछ ज्ञान न होता है, तब तक वह सब कुछ सहती है॥
पर जब वह अपने गौरव का, कुछ ध्यान हृदय में लाती है।
तो फिर अपने अबलापन को, पल भर में मेंट बहाती है॥
इससे कहना उस दानव से, वह अब भी जरा सम्भल जाये।
यों सोच समझ कर काम करे, जिससे विपत्ति सब टल जाये॥
मैं देख रही हूँ आँखों से, जो कुछ भविष्य दिखलायेगा।
जो होना है वह बिना हुये, हरगिज न कभी रुक पायेगा॥
पर और गिराना गिरते को, मुझको तो नहीं सुहाता है।
अच्छा वह है जो गिरते को, ऊपर के लिये उठाता है॥

देवों को समुचित जँचा, माँ का मञ्जु विचार।
शङ्कर से कहने लगे, वे सब शीघ्र पुकार॥

भगवन्! तुम आदि शक्तिधर हो, तुम सृष्टि स्थिति लयकारी हो॥
सुखकर हो मञ्जु मनोहर हो, सच्चे सब के हितकारी हो॥
है नाम तुम्हारा आशुतोष, सत्वर सङ्कट हर लेते हो।
अपने करुणा के मेघों से, मन का कल्मष धो देते हो॥

दयनीय दशा है देवों की, हे देव दयामय दया करो।
सन्देश शीघ्र यह पहुँचा कर, जीवन हम सबका नया करो॥

* गाना *

शङ्कर तुम्हीं हो सबके, सङ्कट हटाने वाले।
देकर के सुख सभी को, दुख के मिटाने वाले॥
पीते हो तुम जहर पर, देते हो रोज अमृत।
तन पर भस्म रमा कर, दौलत लुटाने वाले॥
होते प्रसन्न हो तुम, एक बिल्व-पत्र ही से।
बदले में फूल के हो, तुम फल दिलाने वाले॥
विनती यही है करता, चरणों में दास "ज्वाला"।
सङ्कट सभी मिटा दो, सङ्कट मिटाने वाले॥

शङ्कर ने जब यों सुना, देवों के मृदु बैन।
हर्षित हो हँसने लगे, उनके तीनों नैन॥
बोले वे "हे देवगण! है यह दिव्य विचार।
सुर के कारज के लिये, शिव हैं सदा तयार"॥

देवी का दूत कार्य करना, जब शङ्कर को स्वीकार हुआ।
तब जलथल में नभमण्डल में, सब में उनका जयकार हुआ॥
शिव ने जब यह स्वीकार किया तब देवी को आराम हुआ।
शिव दूत हुये उनके इससे, शिवदूती उनका नाम हुआ॥
पहले तो प्रेम-मग्न होकर, इष्ट का उन्होंने ध्यान किया।
फिर 'जो आज्ञा हो' यह कहकर निशचरपति ने प्रस्थान किया।
उनके शरीर में लिपटे थे, जो सर्प सभी फुफकार उठे।
हर हर शिव शङ्कर मङ्गलकर, कह कर सब देव पुकार उठे॥

मस्तक का जटाजूट डोला, गङ्गा में लहर उठी भारी।
देवों का कार्य साधने को, चल पड़े वहाँ से त्रिपुरारी॥
लगा हुआ शुम्भ का, इधर बड़ा दरबार।
प्रस्तुत थे छोटे बड़े, सभी वहाँ सरदार॥
दानव का दरबार देख, सुरपति की सभा लजाती थी।
उसकी शोभा के आगे सब, शोभा फीकी पड़ जाती थी॥
तोरण बहुमूल्य लटकते थे, सोने के चित्रित खम्भों से।
मणिमुक्ता चारु झलकते थे, झिलमिल कर नाना ढङ्गों से॥
बैठा था शुम्भ शक्तिशाली, एक रत्नजटित सिंहासन पर।
देवाधिप बैठा हो मानो, अपने सुवर्ण के आसन पर॥
ले दण्ड हाथ में बन्दीजन, विरदावलि गाते जाते थे।
दासी के दल उज्ज्वल निर्मल, एक चँवर डुलाते जाते थे॥
नर्त्तकियाँ नृत्य कर रही थीं, गायकगण गान सुनाते थे।
अपनी स्वर लहरी से मानों, वे रस की धार बहाते थे॥
डूब रहा था हर्ष में, जब सारा दरबार।
सहसा बोला शुम्भ तब, होकर क्षुब्ध अपार॥
"बहुत हो चुका अब करो, नाच गान यह बन्द।
चिन्ता में देता नहीं, राग रङ्ग आनन्द"॥
सुख शान्ति पूर्ण जिसका मन है, यह उसको सुख पहुँचाता है।
पर दुखी हृदय को तो यह सब, ज्यादा ही दुखी बनाता है॥
जो आग दिलों में जलती है उसमें अब और न घी डालो।
यों रास रङ्ग में डूबो मत, यों निज अपमान न पी डालो॥
यह तो लड़ने की बेला है, यह नाच गान का वक्त नहीं।
ठहरा अपनी इन देहों का, ठण्डा होने दो रक्त नहीं॥

कड़खा गाने के समय कौन, सोहनी सुहानी गाता है।
हो जब कि भैरवी की बेला, तब कौन विहाग सुनाता है॥
चण्ड मुण्ड का भी हुआ, उस रण में संहार।
अब आगे के युद्ध का, आओ करो विचार॥
मौन हुआ जब शुम्भ यों, कहकर हृदयोद्गार।
एक वृद्ध सामन्त तब, बोला वचन विचार॥
"महाराज आप सच कहते हैं, यह नाच-गान का वक्त नहीं॥
अपमानों पर ठण्डा होवे, हम में है ऐसा रक्त नहीं॥
पर क्षमा माँग कर कहता हूँ, हमने ही आग लगाई है।
अपने ही हाथों से हमने, यह अपनी जीत बुलाई है॥
दीपक की ज्वाला के समान, वह नारी बन में फिरती है।
निश्चर सेना क्यों मरने को, उस पर पतङ्ग सी गिरती है॥
हम सबको अपमानित करने, वह नारी यहाँ न आई थी।
उसको ही लज्जा हरने को, दानव की टोली धाई थी॥
हमने ही रार लगाई है, सब दोष नितान्त हमारा है।
हमने ही मतवाले हो कर, काल के लिये ललकारा है॥
जो जैसी करनी करता है, वह वैसा ही फल पाता है।
इन्द्रायण का बोने वाला, कब आम्र तोड़ कर खाता है"?

* गाना *

विपद में पड़ करके व्यर्थ ही, हम प्रलाप इतना उठा रहे हैं।
बुरा भला फल यहाँ पै आकर, सभी स्वकर्मों से पा रहे हैं॥
है नक़द सौदा यहाँ का यारों, जो जैसा देगा वो वैसा लेगा।
वो खुद ही रोते हैं आगे चलकर, जो दूसरों को रुला रहे हैं॥
है थोड़े दिन की बसन्त-शोभा, कठोर पाले के दिन हैं आगे।
मगर न तब भी मनुष्य 'ज्वाला' बदी को मन से भुला रहे हैं॥

सुनकर ऐसी बात वह, बोला दानव वीर।
"अरे मूर्ख क्यों सो रहा, तू यों अपना धीर?

है तो बुड्ढा लेकिन तुझ में, बुड्ढों की सी कुछ आन नहीं।
क्या तुझको दानव मण्डल के, अपमानों का कुछ ध्यान नहीं?
नारी के पक्ष समर्थन में, कुछ भी तू नहीं लजाता है।
ओ नीच नराधम क्यों ऐसी, कायरता तू दिखलाता है?
नारी कितनी बलवाली हो, आखिर बेचारी नारी है।
नर पर क्या जय वह पायेगी, नर नर है नारी नारी है॥
लड़ने की अगर न इच्छा हो, तो चूड़ी पहन बैठ घर में।
वीरों के बीच न बैठ कभी, तलवार कभी मत ले कर में॥
फूलों में कीड़ों का रहना, अच्छा क्या कभी दिखाता है।
तुझसे कायर के रहने से, मेरा दरबार लजाता है॥
क्या तेरी ऐसी मन्शा है, मैं अब रण करना बन्द करूँ?
नारी से डर करके मन में, अपना सब उद्यम मन्द करूँ॥
लेकिन यह कभी नहीं होगा, यह शुम्भ चित्त का तीखा है।
रण में बढ़ कर पीछे हटना, इसने न आज तक सीखा है"॥

यह सुन करके कह उठा, वह बूढ़ा सामन्त।
"करते हो क्यों देव यों, मर्यादा का अन्त॥

नारी का पक्ष ग्रहण करना, कायर-पन अगर कहाता है।
तो उस कायरता को सादर, यह सेवक गले लगाता है॥
वह कायर नहीं कहाता है, जो नारी का सम्मान करे।
वह कायर नहीं कहाता है, जो साध्वी से दिन रात डरे॥
कायर वह है जो अबला पर, अपना बल विभव जताता है।
और जो उसका सम्मान करे, उसको कायर बतलाता है॥

मैं नीच नहीं, बलहीन नहीं, और कायरता का धाम नहीं।
पर रण में नारी से लड़ना, है नरवीरों का काम नहीं॥
मेरी यह कभी न मन्शा है, रण में अब पीछे पैर पड़े।
सौगन्ध है भेजो सेना को, अबला से जाकर खूब लड़े"॥

सुन कर उस सामन्त की, ऐसी हित की बात।
क्रोधित होकर शुम्भ का, लगा काँपने गात॥
उठा मारने के लिये, कर में ले तलवार।
तभी आन पहुँचे वहाँ, शङ्कर करुणागार॥

डिम डिम डमरू का नाद हुआ, और चम चमकर त्रिशूल चमका।
रोषान्वित लाल लाल होकर, शङ्कर का भाल नैन चमका॥
यों क्रुद्ध देख करके हर को, फुङ्कार उठा सर्पों का दल।
कन्धा के क्रोधित होने पर, बढ़ती है ज्यों दावाग्नि प्रबल॥
वह रूप देख कर शङ्कर का, दानव ज्यों का त्यों बना रहा।
जो पैर उठा वह वहीं रहा, और खड्ग तना का तना रहा॥
शङ्कर ने कहा, "अरे क्यों तुम, वीरों का नाम लजाते हो?
क्यों अपयश एक कमा करके दूजे पर कदम बढ़ाते हो?
वह कायर हैं जो नारी से, लड़ करके नीचा काम करे।
और नारी के संरक्षक का, क्रोधित हो काम तमाम करे"॥

सुन करके उपदेश यह, बोला दानवराज।
"कायर मैं कैसे हुआ, हे शङ्कर महाराज?
जो सन्मुख रण में रार करे, निर्बल हो या बलधारी हो।
उससे लड़ना ही समुचित है, वह नर हो अथवा नारी हो॥
बतलाओ तुम्हीं भला शङ्कर, वह कैसे अबला नारी है?
जिसने नारी होकर नर से, लड़ने की बात विचारी है"?

यह सुन कर बोल उठे शङ्कर, "यह भूल तुम्हारी है भारी।
रण में आकर नर वीरों से, जूझी थी कभी न वह नारी॥
चुपचाप वहाँ पर बैठी थी, लड़ने को यहाँ न आई थी।
तुमने ही तो हे दानवेन्द्र, जा उससे रार बढ़ाई थी॥
कैसे जलता दानव मण्डल, तुम आगी अगर न सुलगाते।
होता इस तरह न नाश कभी, तुम पहले अगर सम्भल जाते॥
मति के उलटी हो जाने से, गति भी उलटी हो जाती है।
मानव की एक भूल ही से, सब बनी बिगड़ती जाती है"॥

❀ गाना ❀

क्या काम करे कोई, क्या नाम करे कोई।
अपने ही काम का क्या, अन्जाम भरे कोई॥
एक भूल से जहाँ में, सब काम है बिगड़ता।
छोटी सी भूल से फिर, कैसे न डरे कोई।
अपने ही हाथ से जो, आगी लगा चुका है।
उसमें स्वयं झुलस कर, कैसे न मरे कोई॥
"ज्वाला" जगत है सारा, एक भूल का खजाना।
इस भूल को भंवर में, कैसे न परे कोई।

शङ्कर जब चुप हो गये, कह कर ऐसे बैन।
शुम्भ तभी कहने लगा, करके तीखे नैन॥
"जो कहते हो तुम वही सही, मैंने ही आग लगाई है।
मैंने ही अपने हाथों से, अपनी यह मौत बुलाई है॥
जब मौत बुलाई है मैंने, तो उसको गले लगाऊँगा।
मर जाऊँगा लेकिन शङ्कर, पीछे पग नहीं हटाऊँगा॥
जो काम उठाया है मैंने, पूरा कर उसे दिखाऊँगा।
डर कर उसके परिणामों से, कायर मैं नहीं कहाऊँगा॥

मुझको यह खूब सिखाते हो, हे मदन दहनकारी शङ्कर।
क्या मैं रण करना बन्द करूँ, एक अबला नारी से डर कर ?
इन बातों से कुछ लाभ नहीं, अब मुझे न यह सब सिखलाओ।
जिस कारण से तुम आये हो, वह कारण मुझको बतलाओ" ॥

कह कर यह जब हो गया मौन शुम्भ बलवान्।
हँस करके कहने लगे, तब शङ्कर भगवान् ॥

"हे शुम्भ तुम्हें मैं देवी का, सन्देश सुनाने आया हूँ।
जो बुद्धि तुम्हारी उलझी है, उसको सुलझाने आया हूँ ॥
जो भाग्य तुम्हारा रूठ रहा, मैं उसे मनाने आया हूँ।
बिगड़ी जो बात तुम्हारी है, मैं उसे बनाने आया हूँ ॥
अब भी है समय सम्भल जाओ, अब भी यह लड़ना बन्द करो।
निश्चयपति अपना भाग्य और, अब आगे अधिक न मन्द करो ॥
नर हो लेकिन रण में लड़कर, नारी से पार न पाओगे।
कितने ही बलशाली हो पर, अबला से मारे जाओगे" ॥

सुन शङ्कर के बैन ये, बोला दानव वीर।
"नारी का गुणगाथा तुम, करो न मेरे तीर ॥
किसलिये लवे की गुणगाथा, शिकरे को देव सुनाते हो।
क्यों काली पर्वतमाला को, आँधी का भय दिखलाते हो ॥
सच है नारी से लड़कर मैं, वीरों का नाम लजाऊँगा।
लेकिन अब और बुरा होगा, जो पीछे पाँव हटाऊँगा ॥
अच्छा तो है पहले ही से, डर करके मनुज न काम करे।
पर एक बार करके उसको, पीछे फिर कभी न पैर धरे ॥
अब तो कुछ प्रारम्भ किया, उसको सम्पूर्ण करूँगा मैं ॥
या तो उद्देश्य सिद्ध होगा, या रण में स्वयं मरूँगा मैं" ॥

यह सुन कर बोल उठे शङ्कर, "अच्छा वैसा ही काम करो।
जिससे तुम देवी के हाथों, अपना ही काम तमाम करो॥
मूर्खों को होश न आता है, अच्छे उपदेशों के द्वारा।
फल कभी न बेत दिखाता है, बरसे गर अमृत की धारा॥
अथवा होनी तो होगी ही, इसमें किसका क्या चारा है।
हारा है अगर मनुष्य कहीं, तो इस तरह बस हारा है"॥

यह कहकर तत्क्षण किया, शङ्कर ने प्रस्थान।
शुम्भ गर्ज कर रोष से, बोला यों बलवान॥
"मेरा यह दरबार है, वीरों का दरबार।
बोला अब रण के लिये, होगा कौन तयार"॥

यह सुन कर योधा मौन रहे, सन्नाटा चहुँ ओर छाया था।
इसलिये कि अब तक के रण से, निश्चर दल घबराया सा था॥
तब शुम्भ कुपित हो गरज उठा, मानों बादल घहराया हो।
या पत्थर की चट्टानों से, नद का प्रवाह टकराया हो॥
बोला ओ नीच पामरो तुम, कायर हो और नराधम हो।
किसलिये कहो खामोश हुये, क्या बल में अबला से कम हो॥
अपमानित होना पड़ता है, उस नारी से हरबार तुम्हें।
फिर भी तुम मौन बने बैठे, धिक्कार तुम्हें धिक्कार तुम्हें॥
अपमानित होकर जिये अगर, वह जीना भी क्या जीना है।
इन अपमानों के पीने से, अच्छा तो विष का पीना है॥
अच्छा तुम बैठे रहो यहीं, मैं ही रण करने जाऊँगा।
तुम चूड़ी हाथों में पहनो, मैं स्वयं कृपाण उठाऊँगा॥

यह कहकर जलने लगे, उसके दोनों नैन।
रक्तबीज नामी असुर, बोला तब यों बैन॥

'हे स्वामी ! हम सब के रहते, क्यों आप युद्ध में जायेंगे ।
जब तक कि कृपाण हमारी है, क्यों आप कृपाण उठायेंगे ।।
हे देव ! आप से पहले मैं, अपना जी जान लड़ाऊँगा ।
स्वामी के लिये रुधिर अपना, पानी की तरह बहाऊँगा ।।
एक नारी पर जय पाने में, क्यों वीर शुम्भ दिलगीर बनें ।
मुझ से सेवक के रहते भी, क्यों स्वामी आप अधीर बनें ।।
है रक्त बीज जो नाम मेरा, वह प्रभु सार्थक हर वक्त रहे ।
तब तक यह दास लड़े रण में, जब तक शरीर में रक्त रहे ।।
वह जीवन सच्चा जीवन है, जिसमें अपना सम्मान रहे ।
जाये या तन में प्रान रहे, पर निज गौरव का ध्यान रहे'' ।।

कहकर ऐसी बात वह, रक्त बीज बलवान ।
माँ से लड़ने के लिये, करने लगा पयान ।।
इधर देवि के पास जा, पहुँचे शम्भु उदार ।
कहा उन्होंने शुम्भ का, उनसे सभी विचार ।।
यह सुनकर सज्जित हुयीं, वे माता सुसक्याय ।
जैसी हो होतव्यता, तैसी होत सहाय ।।

जो होना होता है वैसा, सब साज शीघ्र सज जाता है ।
जो है होतव्य वही होता, संयोग नहीं टल पाता है ।।
जो मूर्ख न हित की बात सुने, है व्यर्थ उसे कुछ समझाना ।
बेकार है सचमुच दुनिया में, अन्धे को दीपक दिखलाना ।।
इससे दुष्टों से लड़ने को, माता जी सजने लगीं वहाँ ।
उनकी शोभा को देख सभी, शोभायें लजाने लगीं वहाँ ।।
मुख देख चन्द्र छविहीन हुआ, भूषण लख उडुगण हीन हुये ।
पैरों की प्रभा देख करके, पङ्कजगण मन में दीन हुये ।।

देवी के दांतों की छवि ने, विद्युच्छवि को बेकार किया।
माता को देख देख करके, देवों ने जय जयकार किया॥

* गाना *

तुम्हीं हो दयामयि ! दया करने वाली।
अतुल स्वर्ग-सुख भूमि में भरने वाली॥
तुम्हें छोड़कर ध्यान किसका करें हम !
तुम्हीं हो हमारी, विपद हरने वाली॥
जगत में है हमको तुम्हारा भरोसा।
महादेवि ! मङ्गल सदा करने वाली॥
हमारे सभी दुःख हरलो दया कर।
तुम्हीं तो हो सङ्कट सभी हरने वाली॥
है कहता यही दास "ज्वाला" चरण का।
कृपा करदो मुझ पर कृपा करने वाली॥

यह सुन माता ने किया, देवों को गत शोक।
सुरगण भी सादर गये, अपने अपने लोक॥
रक्तबीज आया इधर, कर सेना तैयार।
मानों उमड़ा हो कोई, सागर एक अपार॥
वह दुष्ट दानवों की सेना, घनघोर घटा सी घिर आयी।
या सागर के वक्षस्थल पर, लहरों पर और लहर धायी॥
जो धूल उड़ी उस सेना से, उससे सब कोने पूर्ण हुये।
कितने ही भूमिखण्ड दरके, कितने ही पर्वत चूर्ण हुये॥
छिपकर के धूल समूहों में, दिनकर भी अन्तर्ध्यान हुआ।
उस दानवदल की सेना से, दिन में संध्या का भान हुआ॥
पहले तो गरज उठे दानव, और फिर जय जय का शोर हुआ।
फिर मारो चलो धरो पकड़ो, यों स्वर उनमें घनघोर हुआ॥

इसी तरह से सैन्य वह, होकर मन में क्रुद्ध ।
मङ्गलमयि जगदम्ब से, चली मचाने युद्ध ॥
दानव सेना निकली ऐसी, मानो टिड्डी का दल निकला ।
या तरु समूह को ढाने को, झंझा का रूप प्रबल निकला ॥
वह सेना मेघों के दल सी, सब ओर उमड़ती आती थी ।
मग में जो बस्ती आती थी, वह ऊजड़ बनती जाती थी ॥
जो जगह पूर्ण शोभा पर थीं, उस जगह पूर्ण वीरान हुआ ।
और जहाँ शिखर थे पर्वत के, वह थल समतल मैदान हुआ ॥
उस सेना के पदभारों से, पृथ्वी में प्रकट हुयी हलचल ।
महि डोली, डोले शेषनाग, और डोले दिग्पालों के दल ॥
जड़ जङ्गम डोल गये सारे, भूतल के भूधर डोल गये ।
और ऐसी डोला डोली में, देवों के दिल भी डोल गये ॥
फिर से देवों के मण्डल में, यह लख भय का सञ्चार हुआ ।
फिर से उन लोगों के दिल में, पैदा दुख का आजार हुआ ॥

देखा जब सुरवृन्द को, यों होते बेहाल ।
देवों की सब शक्तियाँ, हुयी क्रोध से लाल ॥
करने रक्षा सुरों की, और खलों का नाश ।
अगणित वीरों को लिये, आयी माँ के पास ॥

जिसकी थी शक्ति उसी का सा, उसमें स्वरूप भी सुन्दर था ।
वैसा ही मञ्जु मनोहर था, वैसा ही वर शोभाकर था ॥
ले चारु कमण्डल को कर में, और हंसों के रथ पर चढ़कर ।
ब्रह्मा की शक्ति ब्रह्माणी, आयी ब्रह्मा ही सी बनकर ॥
और शक्ति महेश्वर की जिसने, था माहेश्वरी नाम पाया ।
उनकी बाहों में विषधारी, सर्पों का भूषण सरसाया ॥

हाथों में उनके सजा हुआ, एक तेज त्रिशूल दमकता था।
और भस्मविभूषित मस्तक पर, मणिगण सा चन्द चमकता था॥
छविधर मयूर पर चढ़ करके, हाथों में लिये सांग भारी।
शङ्कर सुत शूर षडानन की, आयीं शक्ती वे कौमारी॥
हाथों में गदा चक्र आदिक, पैने हथियारों को लेकर।
माधव की शक्ति रमा आयीं, होकर सवार खगनायक पर॥
लेकर के अपने हाथों में, वज्रायुध कठिन और दुर्धर।
इन्द्राणी शक्ति सुराधिप की, आयीं ऐरावत पर चढ़कर॥

सजकर यों वे शक्तियाँ, अद्भुत और ललाम।
आयीं करने के लिये, दैत्यों से संग्राम॥

जब देवलोक की सीमा से, यह शक्ति समूह सबल निकला।
उस समय दिखा ऐसा मानो, बिजली का कोई दल निकला॥
या प्रलय मचाने के पहले, उल्का नभ मण्डल में आये।
या लपलप जीभें लपका कर, दौड़ी आगी मुँह फैलाये॥
अब तक दानवदल सागर सा, सब ओर उमड़ता आता था।
मानों मेढक का दल कोई, टरटर कर बढ़ता जाता था॥
पर अब जब स्वर्गलोक में से, नागिनियों का दल दौड़ पड़ा।
उस समय दानवों का मण्डल, सब रहा जहाँ का तहाँ खड़ा॥
जब रक्तबीज से लड़ने को, यह शक्ति समूह तयार हुआ।
तब फिर से परम प्रफुल्लित हो, देवों में जय जयकार हुआ॥

नभ मण्डल में आ गये, सुरगण चारों ओर।
संस्तुति फिर करने लगे, यों अपने कर जोर॥
"शक्ति समूहों हो तुम्हीं, आदि शक्ति के धाम।
बिना तुम्हारे विश्व में, बने न कोई काम॥

तुम सृष्टि स्थिति लय कारी हो, दुर्गति-भय-क्लेश-निवारक हो।
श्रमहर सुखकर शङ्कर जयकर, तुम दुष्ट दनुज संहारक हो ॥
तुमसे है टिकी हुयी धरिणी, तुम हो आधार चराचर के।
तुम अगर न होते रक्षा को, तो मिटते जीव जगत भर के ॥
तुमसे ही हैं हम धीर बने, तुमसे ही हम रणवीर बने।
हे सुभग तुम्हारे रहने से, हम सभी तरह गम्भीर बने ॥
नारी में जब तक लीन रहे, तब तक नर वीर कहाता है।
पर नारी से छुट जाने पर, नर भी निर्बल हो जाता है ॥
तुमने यह सिद्ध किया अबला, सब जग को सबल बनाती है।
शक्तियाँ सभी इस दुनिया की, नारी में आश्रय पाती हैं ॥
नारी तो नर से ऊँची है, उसका पद कभी न नीचा है।
नारी भी वायु वसन्ती है, नरमण्डल अगर बगीचा है ॥

* गाना *

नरों की तुम हो, हैं नर तुम्हारे, नरों की मातेश्वरी दुलारी।
तुम्हीं हो सबके दिलों की सुन्दर, सदा की फूली फली नियारी ॥
तुम्हीं हो आगार ज्ञान बल की, तुम्हीं हो आधार विश्व भर की।
तुम्हीं को पा के, तुम्हें मिला के, मनुष्य होते हैं शक्तिधारी ॥
तुम्हें जो अबला कहे जगत में, वही है भूला हरेक पल में।
नरों की जननी, नरों की भरनी, नरों से निर्बल नहीं है नारी ॥
जो भूला देकर उसे उजाला, तुम्हीं ने गिरतों को नित सँभाला।
हैं शक्तियाँ जो जगत को "ज्वाला", तुम्हीं पे मातेश्वरी हैं वारी ॥

देख शक्तियों को स्वयं, रण के लिये तयार।
देवि चण्डिका चित्त में, हर्षित हुयीं अपार ॥

इस ओर देवि के हाथों में, धन्वा का रण निर्घोष हुआ।
सुनकर उसको सुरगण हरषे, उनका अब दूना जोश हुआ॥
काली गरजीं, केहरि गरजा, और घण्टे का घननाद हुआ।
सुन करके जिसे दुष्ट डरपे, पर देवों का आह्लाद हुआ॥
जलमें थलमें नभमण्डल में, सब ओर घोष यह व्याप उठा।
अम्बर पाताल सहित जिसको, सुनकर पृथ्वीतल काँप उठा॥
सारांश यही उस गर्जन से, दैत्यों का गर्जन मन्द हुआ।
घन के निर्घोषों के आगे, दातुर का स्वर सब बन्द हुआ॥
माँ के गण जब तय्यार हुये, जय जगज्जननि चिल्ला करके।
तब जय जय का प्रतिघोष हुआ, गिरिखण्डों से टकरा करके॥

यह सुन पहले तो हुआ, दानवदल खामोश।
पर फिर थोड़ी देर में, उसको आया होश॥
होश हुआ जब खलों को, तब लेकर हथियार।
सबके सब करने लगे, माँ पर शस्त्र प्रहार॥

इस ओर खलों के बाणों की, धारायें झरती आती थीं।
उस ओर उन्हें हँस हँस करके, चण्डिका काटती जाती थीं॥
इस ओर चले आगी से ये, तो माता का बल नीर हुआ।
गर ये बरसे जलधारों से, तो वह भी चण्डसमीर हुआ॥
कहने का मतलब है यह ही, माँ पर जो अस्त्र प्रहार हुये।
वे पास न उनके पहुँच सके, सब मारग में बेकार हुये॥
और माता ने भी क्रोधित हो, उन पर जो शस्त्र प्रहार किया।
उन सबको दुष्टों ने मिलकर, माता ही सा बेकार किया॥
दोनों के शस्त्र मार्ग ही में, कटते थे और बिखरते थे।
उनकी मारों से कट करके, रणवीर न कोई गिरते थे॥

कुछ देर तलक यह हाल रहा, तीरों पर लाखों तीर गिरे।
पर ऐसी विकट लड़ाई में, कट कटकर कहीं न वीर गिरे॥

यों ही कट कटकर गिरे, कितने ही हथियार।
पर न किसी को भी मिली, वहाँ जीत या हार॥

यह देख शक्तियाँ देवों की, क्रोधित होकर मनमें धायीं।
मानों काले घनमण्डल में, बिजली की लहरें लहरायीं॥
लेकर के चारु कमण्डल को, रण करने ब्रह्माणी आयीं।
और वज्र चक्र और शूल लिये, इन्द्राणी रमा उमा आयीं॥
ब्रह्माणी ने पहले आकर, छिड़का कुछ नीर कमण्डल का।
जिसका कुछ ऐसा असर हुआ, हर गया शौर्य दानव दल का॥
आयीं फिर शक्ति शूलधर की, हाथों में कठिन शूल लेकर।
उसकी मारों में कट कटकर, कितने ही गये प्राण देकर॥
तलवार हाथ में ले करके, आई फिर शक्ति षडानन की।
और असुरवृन्द को खाक किया, जैसे कोई आगी हो वन की।
वज्रायुध चमका बिजली सा, चमके त्रिशूल और तलवारें।
अब प्रलय मचाने को मानों, एकत्रित हुये साज सारे॥

उसी समय पर आ गयीं, माँ काली उस ठौर।
और अनेकों को किया, अपने मुँह का कौर॥

जो सेना बची शीघ्र उसका, काली ने काम तमाम किया।
सुर मण्डल का सब काम किया, दानवदल में कुहराम किया॥
काली अपने मुख मण्डल से, लपलप जिह्वा लपकाती थी।
और जलती आँखों से मानों, चिंगारी झरती जाती थी॥
कितनों के हाथ पैर तोड़े, कितनों का सर मस्तक फोड़ा।
और कितने ही रणशूरों को, काली ने पिच्ची कर छोड़ा॥

कितनों के पेट विदीर्ण हुये, कितने ही मुँह के कौर हुये।
जो आये गिरे वही रण में, और ढेर सभी उस ठौर हुये॥

जब सेना सब मर गई, मची रक्त की कीच।
तब काली फिरने लगीं, रणस्थली के बीच॥

था एक हाथ में शूल तना, और दूजे में तलवार तनी।
माता की मूर्ति मनोहारी, थी उग्र चण्डिका मूर्ति बनी॥
दुष्टों का शोणित पीने से, उनकी जिह्वा थी लाल हुयी।
और मन में क्रोधित होने से, काली थी और कराल हुयी॥
मुँह से श्वास निकलता था, और था शरीर सब लाल हुआ।
दिल में तपतप करके मानो, पृथ्वी में था भौचाल हुआ॥
अथवा बिजली हो दौड़ रही, मानो नभमण्डल में उस क्षण।
या मृत्यु देवि दिखलाती हों, अपना कराल ताण्डव नर्त्तन॥
जिसने देखा वह कांप उठा, वह मूर्ति भयङ्कर ऐसी थी।
क्या कलम करे वर्णन उसका, कह सके कौन वह कैसी थी॥

यों काली का देखकर, वह प्रचण्ड आकार।
"शान्त शान्त माँ शान्त हों, सुरगण उठे पुकार"॥

"हे माता अब कुछ शान्त बनो, अब और न ज्यादा क्रोध करो।
ठहरो जड़ जङ्गम जगती को जननी स्थिर होने दो ठहरो॥
हे दयामयी करुणा करके, अब इतनी दिखला दो तुम।
मझधार हमारी नौका है, इसको उस पार लगा दो तुम॥
ये हाथ तुम्हारे ऐ मैया, भक्तों के लाज रखैया हैं।
और चरण तुम्हारे करणधार, नइया के पार करैया हैं॥
करुणामयि इतनी कृपा करो, अब रक्तबीज संहार करो।
हम दुःख सिन्धु में डूब रहे, माँ हमें उबारो पार करो॥

❀ गाना ❀

चरणों में माँ तुम्हारे, विनती है यह हमारी।
कर दो दया दयामयि हे दुष्ट दर्पहारी॥
हम दीन हीन हैं माँ, वैभव विहीन हैं माँ।
दिन रात बढ़ रही है हम सब की बेकरारी॥
हम हैं सदा तुम्हारे, तुम हो सदा हमारी।
हर दम हमें रहा है, तेरा भरोसा भारी॥
"ज्वाला" तभी हमारे, दुख दूर होंगे सारे।
जिस रोज हम पै होगी, माता नजर तुम्हारी॥

—०—

इधर देख निज सैन्य की, युद्धभूमि में हार।
रक्तबीज दानव चला, कर भीषण हुङ्कार॥

वह वीर बड़ा बलवाला था, बांका था और लड़ाका था।
सच पूछो तो दाहिना हाथ, वह बली शुम्भ राजा का था॥
उसके शरीर से गिरते थे, शोणित के जितने बूँद जहाँ।
उतने ही पैदा होते थे, उसके समान ही शूर वहाँ॥
इससे बिलकुल आसान नहीं, उस दानव पर जय पाना था।
उससे रण में लड़ना गोया, लोहे के चने चबाना था॥
जितना ही वीर बली था वह, उतना ही रण का सच्चा था।
रण में आगे को बढ़ने में, पग कभी न उसका कच्चा था॥
पर्वत की तरह अटल था वह, सागर की तरह प्रबल था वह।
और शस्त्रों की बौछारों में, ध्रुवतारे सा निश्चल था वह॥

गर्ज गर्ज कर जब चला, ऐसा वह रणधीर।
तब फिर से सब सुरों के, बढ़ी हृदय में पीर॥

उनके दिल में छा गया, फिर से शोक अपार।
"रक्षा माँ रक्षा करो", वे सब उठे पुकार॥
यह देख शक्तियों ने मिलकर, ऊँचे अपने हथियार किये।
और रक्तबीज को लक्ष्य बना, कितने ही शस्त्र प्रहार किये॥
पहले तो शक्ति समूहों ने, दानव का बल बेकार किया।
और फिर उस पर इन्द्राणी ने, वज्रायुध का एक वार किया॥
इससे उस दानव के तनके, क्षत विक्षत सारे ठौर हुये।
पर जितने रक्तबिन्दु टपके, उतने ही दानव और हुये॥
यह हाल देख कौमारी ने, उन सब पर असि का वार किया।
और शिव शक्ति शिवा ने भी, दैत्यों पर शूल प्रहार किया॥
पर जितने ही रणवीर गिरे, उतने ही योधा और हुये।
है गरज कि इनसे उस रण के, परिपूर्ण सभी हौ ठौर हुये॥
असि तोमर खड्ग शूल आदिक, हथियार सभी बेकार हुये।
गर दानव एक गिरा रण में, तो पैदा वहाँ हजार हुये॥
आई एक बाढ़ करारी सी, दानव योद्धाओं की रण में।
यह देख देख कर देव सभी, घबराये दुख पाकर मन में॥

इधर दानवों को हुआ, यह लखकर आनन्द।
जय जय का उन सभों ने, किया घोष निर्द्वन्द॥

उस ओर स्वर्ग में देवों में, दुख के कारण कुहराम हुआ।
इस ओर दानवों के दल में, फिर सबको सुख अभिराम हुआ॥
आसार विजय के देख देख, दैत्यों में जय जयकार हुआ।
और कर भविष्य की चिन्तायें, दैवों को दुःख अपार हुआ॥
अब देवि समूहों पर बरसी, दैत्यों के अस्त्रों की मारें।
मानों बादल बरसाता हो, पृथ्वी पर जल की बौछारें॥

लपलप कर तलवारें लपकें, और सनसन करके तीर चले।
जो उनके आगे पड़ा वहाँ, उनके शरीर वे चीर चले॥
बरसाये उन खलों ने, माँ पर इतने बाण।
सभी शक्तियाँ हो गयीं, उनमें अन्तर्ध्यान॥
जितने ही शर बेकार किये, माँ ने अपने हथियारों से।
उतना ही उनको ढाँक लिया, दैत्यों ने फिर शरधारों से॥
यह हाल देख शक्तियाँ सभी, मनमें कुछ जरा मलीन हुयीं।
बेहाल हुयीं, बलहीन हुयीं, और उनकी बुद्धि विलीन हुयीं॥
शक्तियाँ सभी जब क्षीण हुयीं, तब सुर मण्डल घबरा उठ्ठा।
और उनके दुःख भरे दिल में, भय का सागर लहरा उठ्ठा॥
देखा जब कौशिकी ने, देवों को दिलगीर।
तब क्रोधित हो चित्त में, वे हो गयीं अधीर॥
फिर माता का कोदण्ड उठा, और धन्वा की टङ्कोर हुयी।
और चण्डनाशिनी काली की वह युद्ध गर्जना घोर हुयी॥
इस ओर देवि का चाप तना, और बाणों की बौछार हुयी।
मानों पर्वत की माला पर, वज्रों की भीषण मार हुयी॥
उन बाणों की बौछारों से, दैत्यों का सब शर जाल कटा।
दिनकर की किरणों से कटकर, मानों मेघों का जाल फटा॥
कब बाणों चढ़े प्रत्यञ्चा पर, कब छोड़ चाप को तीर चले।
यह तभी ज्ञात हो पाया जब, वे दुष्टों के तन चीर चले॥
माता की मारों के आगे, दुष्टों का दल बदहोश हुआ।
देवों में तो जयघोष हुआ, पर उनका ठण्डा जोश हुआ॥
जिसने जिस ओर जगह पाई, उस ओर वहीं वह भाग गया।
देवों का सुख फिर जाग गया, और दुष्टों का सौभाग गया॥

काली से कहने लगीं, फिर माता हरषाय।
"रक्तबीज के नाश का, आओ करें उपाय॥
आओ बतला दें दुनिया को, है कभी नहीं निर्बल नारी।
अबला कहलाती है लेकिन, सबला है सुकुमारी नारी॥
नारी सब से बलवाली है, नारी आगार शक्ति का है।
है प्रेम-भाव सब नारी में, नारी भण्डार भक्ति की है।
नारी ही से संसार हुआ, नारी ही नर की माता है।
नारी ही जीवनदाता है, नारी ही भाग्य विधाता है॥
नारी ही विद्यादात्री है, नारी धन देने वाली है।
सङ्कट के अवसर पर नारी, सङ्कट हर लेने वाली है॥
नारी का आदर करने से, नर जग में आदर पाता है।
जो नारी का अपमान करे, वह पामर नीच कहाता है"॥

यह कहकर माँ ने कहा, "सुनो देवि चितलाय।
रक्तबीज के नाश का, है बस एक उपाय॥
तुम हो सब तरह योग्य इससे, बस तुम्हीं उसे कर सकती हो।
चाहो तो देवों के सङ्कट, सब पल भर में हर सकती हो॥
मैं रक्तबीज को मारूँगी, पर तुम यह दया प्रदान करो।
जितने शोणित के बिन्दु गिरें, इनको तुम सत्वर पान करो॥
उस रक्तबीज के अङ्गों से, जितनी शोणित की धार गिरे।
वह कभी न हे चण्डिका कहीं, पृथ्वी पर किसी प्रकार गिरे॥
वरना यह तुम्हें ज्ञात ही है, गर एक बिन्दु गिर जायेगा।
तो दैत्य एक उसके बदले, फिर से पैदा हो जायेगा"॥
माँ का यह जभी वि र हुआ, तब देवों में जयकार हुआ।
और रक्तबीज की सेना में, अशकुन भी सभी प्रकार हुआ॥

रोये सियार, कुत्ते रोये, और डरपी दैत्यवाहिनी भी।
और रक्तबीज की फड़क उठी, शङ्का से आँख दाहिनी भी॥

माँ का मञ्जु विचार लख, देव गये दुख भूल।
"जयमाँ, जयमाँ" कह सभी, लगे बरसाने फूल॥

देखो हे बहनों माताओं! कुछ करनी दुर्गा माता की।
बल बुद्धि और ताकत देखो, दुख हरनी दुर्गा माता की॥
बहिनों! पहिले की ललनायें, तुमसी ही कोमल नारी थीं।
तुमसी ही देवि दुलारी थीं, तुमसी ही वे सुकुमारी थीं॥
यह था, लेकिन वे सब तुम सी, परदे में कभी न मरती थीं।
नर के समान ही जीती थीं, और नर ही सी वे मरती थीं॥
जीवन की सच्ची देवी वे, जीवन का तत्व समझती थीं।
दुख में कुछ दुखी न होती थीं, सङ्कट में धीरज धरती थीं॥
जब जब पहले माँ बहनों के, सङ्कट सिर पर मँडराते थे।
तब तब वे आगे बढ़ती थीं, और सङ्कट सब टल जाते थे॥
नारी ही सरस्वती हो कर, विद्या और वैभव देती है।
धन देती है लक्ष्मी होकर, दुर्गा होकर बल देती है॥
रुद्राणी बन कर नारी ही, जग का संहार मचाती है।
और फिर से आदिशक्ति होकर, नारी ही जग उपजाती है॥
तुम भी ओ बहनों माताओं, भारत की वह ही नारी हो।
लक्ष्मी की तुम्हीं लाड़िली हो, दुर्गा की तुम्हीं दुलारी हो॥
तुममें है वह ही तेज भरा, वैसी ही तुम में ताकत है।
वैसी ही हिम्मत जुर्रत है, वैसी ही भारी लियाकत है॥
फिर भी क्यों अपना पहले का, सब गौरव भूली जाती हो।
क्यों नहीं छोड़ दुर्बलता को, तुम कर्म-भूमि में आती हो॥

❀ गाना ❀

आओ आओ, हे विजय दायिनी नारी आओ।
भारतोद्यान की, हे फूली कियारी आओ॥
सो रहे हैं जो उन्हें आके उठाओ आओ।
देश की शिक्षिका, दुर्गा की दुलारी आओ॥
गिरते गिरते तो बहुत, गिर चुकी हो ऐ नारी।
गिर के फिर उठने की अब आ गयी बारी आओ॥
है प्रतीक्षा यहाँ कब से तुम्हारे आने की।
प्रेम पावित्र्य की हे मूर्ति सुखारी आओ॥

रक्तबीज का अब हुआ, आगे जैसा हाल।
कहता हूँ जैसे मिली, उनको मौत कराल॥
वह वीरों को साथ ले, दौड़ा माँ की ओर।
और वृष्टि करने लगा, बाणों की घनघोर॥

बाणों पर बाण इधर बरसे, दैत्यों के दुर्धर चापों से।
पर माँ ने उन्हें काट डाला, निज पैने अस्त्र कलापों से॥
फिर माता ने क्रोधित होकर, उन दैत्यों पर शर बरसाये।
जो बाणों के आगे आये, वे वहाँ न फिर बचने पाये॥
जो सम्मुख संगर में आया, माँ ने उसका संहार किया।
शर से, शूलों और सांगो से, उन सबका बेड़ा पार किया॥
उस रक्तबीज के लोहू से, पैदा थे जितने वीर हुये।
माता की मारों के आगे, वे व्याकुल और अधीर हुये॥
उनका जो शोणित गिरता था, उसको काली पी जाती थीं।
और दैत्य जो पैदा होते थे, तो मुँह में उन्हें चबाती थीं॥

माँ के शस्त्रों की मारों से, कोई भी वहाँ न वीर रुका।
उन सबके जीवन-दीप बुझे, जब शोणित रूपी तेल चुका॥
एक एक कर मर गये, रक्तबीज के वीर।
अब केवल रण में रहा, वही एक रणधीर॥
देखा जब निज सैन्य का, यों होते संहार।
तब सरोष रण में चला, कर भीषण हुँकार॥
जाते ही जाते माता पर, उसने एक असि का वार किया।
और काली पर भी क्रोधित हो, तीखा सा शूल प्रहार किया॥
पर वार सभी बेकार हुये, देवी जी के हथियारों से।
कट गये खड्ग और शूल वहाँ, दोनों ही माँ की मारों से॥
फिर रक्तबीज से रण करने, प्रत्येक शक्ति तैय्यार हुई।
और माताजी की सेना में, एक रोष भरी ललकार हुई॥
तलवार तनी कौमारी की, तन गया वज्र इन्द्राणी का।
और चमचम करके चमक उठा, पैना त्रिशूल रुद्राणी का॥
यह देख कौशिकी बोल उठीं, "शक्तियों चित्त को शान्त करो।
मैं ही रण करने जाती हूँ, तुम सब तब तक विश्राम करो"॥
यह कहकर माँ ने करी, धन्वा की टङ्कोर।
और एक सायक चला, रक्तबीज की ओर॥
यह देख मार्ग ही में उसको, उस दानव ने दो खण्ड किया।
और देवि कौशिकी के ऊपर, एक असि का वार प्रचण्ड किया॥
पर माँ ने उसको रोक लिया, आगे निज सुदृढ़ ढाल को कर।
और खण्डित हो वह खड्ग गिरा, कितने ही खण्ड खण्ड होकर॥
फिर माँ ने उसे मारने को, अपनी तलवार तेज तानी।
मानों अब पाप मिटाने की, एकान्त पुरुष ने हठ ठानी॥

जिस जगह खड्ग वह पड़ती थी बहती थी वहाँ रक्त-धारा ।
कट कटकर देह दुरात्मा की, हो गयी सभी पारा पारा ।
उसके क्षत विक्षत अङ्गों से, जो शोणित धार निकलती थीं ।
उसको माँ काली जी सत्वर, अपने मुँह में पी लेती थीं ॥
माँ की मारों से दानव के, क्रम क्रम से सारे अङ्ग कटे ।
और धीरे धीरे देवों के, दुख के सब काले मेघ हटे ॥
पहले उसके हथियार कटे, कोदण्ड खड्ग और शूल कटे ।
फिर देह कटी, मस्तक फूटा, और दोनों ही भुजमूल कटे ॥
धीरे धीरे जब अङ्ग कटे, और मिटी रक्त की लाली सब ।
होकर नीरक्त गिरा भू पर, वह रक्तबीज बलशाली तब ॥

उसके गिरने से गिरा, दैत्यों का सुखसाज ।
एक बार फिर हो गये, दानवगण नाराज ॥
दैत्यों में होने लगा, दुख से हाहाकार ।
पर देवों में आ गया, फिर आनन्द अपार ॥
सुमन वृष्टि करने लगे, पहले वे हरषाय ।
फिर वे सब कहने लगे, माता के ढिग आय ॥

'जयमाँ जय शक्तिदायिनी माँ, जयमाँ जय सौख्य प्रदायिनि माँ ।
विश्वम्भरि, विश्वपालिनी माँ, जय जगदम्बे अनपालिनी माँ ॥
हम धन्य हुये, गत शोक हुये, और दुःख हमारे दूर हुये ।
माँ तेरी तनिक दया ही से, हम सब के सङ्कट चूर हुये ॥
गर तुम्हीं न करुणा करतीं तो, हम सबकी क्या गति होती माँ ।
सङ्कट में देवों की टोली, यह फूट फूट कर रोती माँ ॥
जैसी अब तक करुणा की है, वैसी आगे करती जाना ।
हम तुम्हें भूल जावें तो भी, तुम हमें न मन से बिसराना ॥

❀ गाना ❀

दयामयि दया इतनी दिखा दो हम पर।
न दिल से हमें, दूर करना दया कर॥
सताने हमें जब बढ़े, खल निशाचर।
तो उनको मिटाना, महादेवि! आकर॥
बढ़ें पाप फिर से, जो दुनियाँ में माता।
तो हरना उन्हें, शीघ्र आकर कृपा कर॥
हमारी विपद, दूर करना हमेशा।
है कहता यही "ज्वाला" चरणों का चाकर॥

❀ ० ❀

❀ इति ❀

मङ्गलाचरण

करदो दया दयामय ! हे कृष्ण हे मुरारी ।
चरणों में आ पड़ा है करुणा का यह भिखारी ॥
गज को तुम्हीं ने तारा, प्रह्लाद को उबारा ।
कृष्णा की लाज रक्खो, अब है हमारी बारी ॥
भगवन् ! हमें समझना, तुम दूसरा सुदामा ।
उसके समान ही है, दुर्बल दशा हमारी ॥
रूठो न हमसे स्वामी, हम दीन हैं दुखी हैं ।
कुछ तो नजर उठाकर, देखो दशा हमारी ॥
दिन रात कब से "ज्वाला" रटता है नाम तेरा ।
आजा हमारे दिल में, हे गोपदल-बिहारी ॥

शुम्भ निशुम्भ का वध

* कथा प्रारम्भ *

रक्तबीज का हो गया, जब रण में संहार।
देवी के द्वारा मिली, दानवगण को हार॥
तब फिर से उनके हुआ, जी में दुःख अपार।
धन जन के विध्वंस से, हा हा उठे पुकार॥

उस रक्तबीज के मरने से, यों दानवपुरी मलीन हुयी।
ज्यों चन्द्र अस्त हो जाने से, रजनी नितान्त छवि-हीन हुयी॥
मानों बसन्त का अन्त हुआ, और पतझड़ का मौसम आया।
बन की सब शोभा नष्ट हुयी, जब फूलों का दल मुरझाया॥
अब तक जो अपनी शोभा से, सुरपुर से होड़ लगाती थी।
अब वही दानवों की नगरी, शमशान तुल्य दिखलाती थी॥
बन बाग गेह सब वे ही थे, पर उनमें हास विलास न था।
जड़ ही जड़ सभी दिखाता था, चेतन का कुछ आभास न था॥
ऐसा कोई भी न था, उस पुर में आगार।
जहाँ न अब हो रहा हो, दुख से हा हा कार॥

घर घर नैराश्य उमड़ता था, घर घर में शोक घनेरा था।
मानो दुख शोक निराशा ने, हर घर को आकर घेरा था॥
हो जहाँ न कोई वीर मरा, ऐसा पुर में आगार न था।
और जहाँ न शोक छा रहा हो, ऐसा कोई परिवार न था॥
कितनी प्यारी माताओं की, गोदियाँ सुतों से हीन हुयीं।
अपने जीवन-धन खो खोकर, कितनी अबलायें दीन हुयीं॥
भाई भाई से रहित हुये, और मित्र मित्रगण से छूटे।
हा! मृत्यु सुन्दरी ने कितने, हँस हँस कर वीर-रत्न लूटे॥

दुख में यों आया सभी, जब कि रहे थे भूल।
दैत्यराज के भी उठा, घोर चित्त में शूल॥

जब से उसने सम्वाद सुना, दैत्यों की सैन नसाने का।
और रक्तबीज रूपी अपने, उस रुचिर रत्न लुट जाने का॥
तबसे वह वीर अधीर हुआ, दिलगीर और बदहोश हुआ।
उस रक्तबीज के मरने से, उसका सब ठन्डा जोश हुआ॥
अब तक जो बड़ा लड़ाका था, और रण में जो न अधीर हुआ।
अबला के हाथों जक खाकर, वह वीर आज दिलगीर हुआ॥
उस दानव ने मन में जिसको, समझा था साधारण नारी।
उस नारी ही ने आखिर को, उसको हैरान किया भारी॥
ताकत की उसमें कमी न थी, वह वीर बड़ा बलवाला था।
पर अहङ्कार ने भी उसकी, आँखों पर परदा डाला था॥
इस अहङ्कार ही ने आखिर, उसको यों नीचा दिखलाया।
वह भला कहाँ बढ़ने पाया, जो अहङ्कार कर इतराया॥

❀ गाना ❀

सब वैभव झूठा रे साइयाँ, व्यर्थ क्यों इतराया।
धन दौलत और माल खजाना, जन जीवन और काया रे॥
सपना है यह दुनिया सारी, दो दिन की सब माया रे।
झूठे हैं ये नाते सारे, झूठी इनकी माया रे॥
मूर्ख वही पग पग पर भूला, जो इनमें इतराया रे।
अहङ्कार करके जो फूला, उसने धोखा खाया रे॥
घर घमण्ड का है नित खाली, गर्व कहाँ फलियाया रे।
करके अहङ्कार दुनिया में, कौन कहाँ बढ़ पाया रे॥
वह वीर कहलाया "ज्वाला" जो इससे बच पाया रे।
सब वैभव झूठा रे साइयाँ व्यर्थ क्यों०॥

बैठा था द्युतिहीन हो, सिंहासन पर शुम्भ।
और पास में था खड़ा, उसका अनुज निशुम्भ॥
सब सचिव शोक में डूबे थे, और सबके मुख मुरझाये थे।
संध्या में रवि के छिपने पर, मानों सरोज कुम्हलाये थे॥
सब सभा मौन थी व्याकुल थी, दिलगीर सभी दरबारी थे।
दिल में दुख के घन छाये थे, आँखों से आँसू जारी थे॥
क्यों दुःख न पायें दरबारी, जब नृप पर दुर्दिन आये हों।
सब डूबें क्यों न अन्धेरे में, जब रवि पर बादल छाये हों॥
नीरव थी वेणु सहित वीणा, नीरव मृदङ्ग थे पड़े हुये।
और नीरव नर्त्तकियों के दल, थे विकल ढङ्ग से खड़े हुये॥
सब ओर दिशायें नीरव थीं, सर्वत्र एक सन्नाटा था।
हा! दुष्टकाल ने असमय में, उनका आशा-तरु काटा था॥
यह कौन जानता था मन में, क्या दृश्य दैव दिखलायेगा।
एक अबला नारी के हाथों, दैत्यों का नाश करायेगा॥

नीरव जब हो रहा था, वह सारा दरबार।
किये अनुज से शुम्भ ने, तब यों प्रकट विचार॥

"हे भाई! हे प्यारे भाई! यह कैसी हाय लड़ाई है।
किन कर्मों से हम लोगों ने, यह दुखमय दुर्गति पाई है॥
जाने मेरे किन दोषों से, मुझ पर यों विधना बाम हुआ।
क्या मैंने दिल में सोचा था, क्या उल्टा यह परिणाम हुआ॥
भाई! अब मैंने जान लिया, यह नारी निपट न नारी है।
बल में बल वाले वीरों से, बढ़कर अबला सुकुमारी है॥
साधारण उसे समझ करके, मैंने कितना धोखा खाया।
हा! अपनी करनी का मैंने, हाथों हाथों ही फल पाया॥
वरना मेरे इन महलों में, सुरपुर का वैभव छाया था।
फिर यह रमणीमणि लेने को, मैंने क्यों हाथ बढ़ाया था॥
जिसको मैंने मणि समझा था, वह दाहक चिनगारी निकली।
जिसमें यह दैत्यों की टोली, होकर पतङ्ग के सदृश जली॥
इसको हर लेने की मैंने, किस कुक्षण में मति ठहराई।
मैं किसके सिर यह दोष धरूँ, सब दोष भाग्य का है भाई"॥

यह कहकर जब हो गया, मौन वीरवर शुम्भ।
तब वीरोचित दर्प से, कहने लगा निशुम्भ॥

"हे भाई! रणदुर्धर भाई! क्यों तुम यों व्याकुल होते हो।
क्यों धैर्यवान् हो करके भी, यों धैर्य चित्त का खोते हो॥
नारी कितनी बलवाली हो, पर आखिर को तो नारी है।
क्यों उससे शुम्भ डरे मन में, जब वह तुरन्त बलधारी है॥
तुम वीरवंश में हो जन्मे, वीरोचित कर्म तुम्हारा है।
हे भाई तुमको योग्य नहीं, जो यों तुमने जी हारा है॥

सब सहना काम हमारा है, दुख सुख जो कुछ आगे आवे।
वह वीर नहीं जो सङ्कट में, अस्थिर हो करके घबरावे ॥
सुख है यदि अटल न पृथ्वी पर, तो दुख भी अटल नहीं होता।
यह सोच सोच कर सङ्कट में, विद्वान् नहीं धीरज खोता" ॥

❀ गाना ❀

दुःख है दो दिन का मेहमान।
अन्त में वह भी करे पयान ॥ दुःख है० ॥

सुख की अगर नहीं रहती है, हरदम वैसी शान।
तो दुख का भी उठ जाता है, दो दिन में सामान ॥ दुःख है० ।
सुख के बाद अगर होता है, दुख का दुखमय गान।
तो दुख में भी सुन पड़ती है, फिर से सुख की तान ॥ दुःख है० ॥
सुख दुख आते ही जाते हैं, दिन और रात समान।
इससे दुख में तजे न "ज्वाला" धैर्य कभी विद्वान ॥ दुःख है० ॥

—०—

सुन कर अपने अनुज के, नीति भरे यों बैन।
दैत्यराज कहने लगा, होकर कुछ बेचैन ॥

"हे भाई! तुमने ठीक कहा, इसमें तौहीन हमारी है।
पर दिल को कैसे समझाऊँ, व्याकुलता उसको भारी है ॥
जिन हाथों से धूम्राक्ष मरा, और जिसने चण्ड मुण्ड मारा।
और जिसने रक्तबीज को भी, रण में रण करके संहारा ॥
हे भाई क्या वे हाथ कभी, हैं एक अबला सुकुमारी के।
दुर्गति दैत्यों की आयी है, सचमुच स्वरूप में नारी के ॥

तुम कहते हो मैं धीर धरूँ, पर कैसे यह दिल धीर धरे।
जिसकी आशायें टूटी हों, भाई वह कैसे धीर धरे॥
मेरी यह भरी पुरी नगरी, पहले आनन्द-भवन सी थी।
शोभा में स्वर्ग-सदन सी थी, सुषमा में नन्दन बन सी थी॥
पर क्रम क्रम से इस उपवन के, सब फूल सुखाये जाते हैं।
और एक एक करके भाई! बिरवे मुरझाये जाते हैं॥
ऊजड़ उद्यान बनाने को, हेमन्त दौड़ती आती है।
जीवन का दीप बुझाने को, सिर पर आंधी मड़राती है"॥

यह सुनकर कहने लगा, शुम्भ अनुज सोल्लास।
हे भाई! क्यों हो रहे, तुम यों आज हताश॥

"जो है अपनी लीलाओं से, सबको विमुग्ध करने वाला।
उस जगत्पिता जगदीश्वर की, दुनिया है अहो नाट्यशाला॥
वह बैठा हुआ अकेला ही, जग का सब काम चलाता है।
नाटक के चतुर खिलाड़ी सा, कितने ही दृश्य दिखाता है॥
उठता है आज अगर कोई, तो कल वह ही गिर जाता है।
और आज दुखित है जो मनमें, कल वह फिर से सुख पाता है॥
सुख जाने पर दुख आता है, दुख जाने पर सुख आता है।
उस नटनागर की लीला से, यह ही क्रम होता जाता है॥
दैत्यों के आज गिरे दिन हैं, वे कल फिर से फिर जावेंगे।
और आज देव जो हँसते हैं, कल उनके दिन गिर जावेंगे॥
गिर कर जब आगे उठना है, तो फिर गिरकर क्यों रोयें हम।
सङ्कट में पड़ कर हे भाई! क्यों धैर्य चित्त का खोयें हम"॥

* गाना *

युद्ध से डरकर हटे, वह वीर कहलाता नहीं।
जो न हँस हँस कर मरे, वह नाम कर पाता नहीं॥
हो अकेला आप ही, कुछ पास में सेना न हो।
किन्तु तो भी शत्रुओं से, वीर भय खाता नहीं॥
दुःख पग पग पर मिलें, सब ओर सङ्कट हों घिरे।
शोक का वह राग लेकिन, बेसुरा गाता नहीं॥
है वही रणवीर सच्चा, शूर है "ज्वाला" वही।
दीनता का बोल जिसकी, जीभ पर आता नहीं॥

— ० —

यह कह करके कह उठा, फिर वह वीर निशुम्भ।
"तुम बैठो मैं ही चला, रण करने हे शुम्भ"॥
यह कह कर झंझा के समान, वह बांका वीर निशुम्भ चला।
ऊँचे उदयाचल के ऊपर, मानो सरोष सूरज निकला॥
अथवा जल वृष्टि मचाने को, छाये गरजन करते नवघन।
या तरु समूह के ढाने को, बह उठा प्रभञ्जन सन सन सन॥
कितनी ही ध्वजा उड़ी नभ में, और कितनी उड़ीं पताकायें।
वर्षा के आने पर मानों, ज्यों बगुलों की पंक्ती छायें॥
सङ्ग में निशुम्भ के दैत्य सभी, यों सज सजकर बाहर निकले।
मानों जल-प्रलय मचाने को, मेघों पर मेघ समूह चले॥
इधर दैत्य थे आ रहे, करते रण कल्लोल।
उधर शक्तियाँ यों उठीं, माता से सब बोल॥
"मां! देखो यह आगे कैसी, आँधी मँडराती आती है।
घनघोर घटा नभमण्डल में, घिर घिर कर उमड़ी आती है॥
वर्षा का है अब अन्त हुआ, अब तो मां शरद् सुहावन है।
फिर क्यों आँधी मँडराती है, और छाया क्यों नभ में घन है॥

वर्षा की ऋतु जब बीत चुकी, असमय में घन गर्जन कैसा ?
माँ ! प्रकृति नटी के अङ्गों में, यह सहसा परिवर्तन कैसा ?
वह देखो माँ ! उन मेघों में, वह बिजली नर्तन करती है ।
और उड़ उड़कर नभमण्डल में, बकपंक्ति चित्त को हरती है ॥
बतलाओ यह कौतुक क्या है, मां चित्त आज चकराया है ?
क्या सचमुच ही घन छाया है, या यह दैत्यों की माया है" ?

यह सुन कर माँ ने कहा, "सुनो शक्तियों आज ।
दीख रहा जो है नहीं, वह वर्षा का साज ॥

ये मेघों से जो दीख रहे, वे तो हैं दैत्यवृन्द सारे ।
और बिजली सी जो दमक रही, वे चमक रहीं हैं तलवारें ॥
आँधी सा जिसको समझ रही, वह असुर गणों की टोली है ।
घन गर्जन सा जो होता है, वह गर्जन उनकी बोली है ॥
वह देखो जो नभमण्डल में, बगुले से उड़ते आते हैं ।
वे श्वेत रङ्ग वाले उनके, झण्डे फर फर फहराते हैं ॥
मेरे बाणों से मरने को यह, दैत्य चमू घिर आई है ।
लड़ने निशुम्भ यह आया है, जो शुम्भराज का भाई है ॥
सब सजलो फिर रण-सज्जा से, आओ इन दैत्यों को मारें ।
बूंदें सी पड़ने लगीं अरे ! लो बाणों की भी बौछारें" ॥

इधर देवि प्रस्तुत हुयी, करने को संग्राम ।
उधर हिमालय शैल पर, आये दैत्य तमाम ॥
छोड़े वीर निशुम्भ ने, कितने ही नाराच ।
सनसन कर वे छा गये, नभमण्डल में नाच ॥

नाराच नाचते थे मन में, और वे सबको संहार रहे ।
मानो सरोष पन्नगियों के, दल के दल हों फुफकार रहे ॥

या सनसन कर नभमण्डल में, उल्का पर उल्का टूट रहे।
अथवा मेघों में बँधी हुयी, बिजली के बन्धन छूट रहे॥
सूरज समेत आकाश छिपा इन बाणों की बौछारों से।
और महाप्रलय का साज सजा, इन खरतर शर की धारों से॥
विस्मित हो और सशंकित हो, जड़ जङ्गम सभी डरे मन में।
सबके शरीर यों सूख गये, सूखे जवास ज्यों सावन में॥
यह देख चित्त में जीवों के, फिर से चिन्ता के स्रोत बहे।
और भक्ति भाव भर कर मन में, भक्तों ने माँ से ये बैन कहे॥

* गाना *

करुणा करके हे दयामय ! अपनी करुणा दिखला देना।
चरणों में तेरे हम दास पड़े, हमें हाथ पकड़ के उठा लेना॥
सङ्कट सिर पर बहुतेरे हैं, दुख भ मां ! हमको घेरे हैं।
हम तो बस चाकर तेरे हैं, दिल से न हमें बिसरा देना॥
कोई डांड नहीं पतवार नहीं, और पास में खेवनहार नहीं।
मझधार है नैया ऐ मैया, जरा उसको पार लगा देना॥
सब ओर घनेरी अँधेरी है, और मां ! विपदा बहुतेरी है।
"ज्वाला" पै जरा करुणा करके, अपनी वह ज्योति दिखा देना॥

सुन करके निज जनों की, दुख से भरी पुकार।
सजग हुयी, संभ्रम उठी माता हो तैयार॥
पहले तो माता ने उठकर, एक धन्वा का निर्घोष किया।
और शक्ति समूहों ने मिलकर, फिर उच्चा जयजय घोष किया॥
इस ओर देवि के हाथों में, उनका दुर्धर शर चाप उठा।
और शक्ति समूहों के कर में, जब ऊँचा अस्त्र कलाप उठा॥
तब जल थल नभ सब कांप उठा, सुर नर हो विह्वल कांप उठे।
महि कांपी शेषनाग कांपे, और दैत्यों के दल कांप उठे॥

गज वाले कँपे गयन्दों पर, और अश्वारोही अश्वों पर।
कांपे पदसैनिक पृथ्वी पर, और वीर रथी कांपे रथ पर॥
इस ओर पिनाकी के शर सा, जब माता का नाराच उठा।
तब डरा दैत्य मण्डल सारा, और देवों का दल नाच उठा॥
बरसाये फिर देवि ने, इतने बाण कराल।
जिनसे कट कटकर गिरा, दैत्यों का शरजाल॥
दुष्टों का सब शरजाल कटा, फिर से निर्मल आकाश हुआ।
दैत्यों का वृन्द हताश हुआ, और देवों में उल्लास हुआ॥
यह सब निशुम्भ ने देखा जब, तब वह क्रोधित हो दौड़ पड़ा।
और आकर शक्ति समूहों से, वह वीर बली घनघोर लड़ा॥
क्रोधित हो मन में माता पै, उसने कितने ही शर छोड़े।
पर हँस हँस करके माता ने, उसके वे पैने शर तोड़े॥
फिर शङ्कर के त्रिशूल से भी, अति तीव्र कराल फरक वाले।
माता के बाण उठे नभ में, दैत्यों के संहरने वाले॥
उनसे निशुम्भ के शस्त्र कटे, रथ अश्व और शर चाप कटे।
दैत्यों के शस्त्रकलाप कटे, और देवों के सन्ताप कटे॥
रथ से वह वीर विहीन हुआ, और धन्वा से भी हीन हुआ।
तो भी निशुम्भ वह बलवाला, मनमें कुछ जरा न दीन हुआ॥
उसने एक तेज त्रिशूल लिया, और उसको छोड़ा माता पै।
तरुभञ्जन बली प्रभञ्जन सा वह आयुध दौड़ा माता पै॥
शूली का शूल इधर छूटा, रुद्राणी के वर हाथों से।
और दानव का त्रिशूल टूटा, उस आयुध के आघातों से॥
जब कट करके हो गया, वह त्रिशूल बेकार।
होकर क्रुद्ध निशुम्भ ने, तब खींची तलवार॥

ज्यों मेघों के बीच में, बिजली करे विहार।
त्यों ही रण के मध्य में, चमकी वह तलवार॥
वह वीर वायुगति से दौड़ा, तलवार ढाल कर में लेकर।
ज्यों सर्प क्रुद्ध हो धाता है, पैरों से कुचले जाने पर॥
यह देख देवि के हाथों में, धनु के बदले तलवार उठी।
दैत्यों में आर्त्त पुकार उठी, देवों में जय जयकार उठी॥
तलवार म्यान से निकली जब, तब सबकी आँखें चौंध गयी।
मानो चम चम करके बिजली, आँखों के आगे कौंध गयी॥
पहले निशुम्भ ने आ करके, एक रोष भरा हुङ्कार किया।
कौर फिर जगदम्बा दुर्गा पर, असि का एक तीखा वार किया॥
माता ने आगे करी ढाल, और वार वहीं बेकार हुआ।
पानी ज्यों पत्थर पर बरसे, वह निष्फल उसी प्रकार हुआ॥
फिर खड्ग तनी रणचण्डी की, और मेघों से सब दुष्ट हटे।
इस ओर खड्ग के वार हुये, उस ओर दैत्य के अङ्ग कटे॥
यह देख दैत्य ने झुँझलाकर, फिर से तलवार उठाई जब।
हो क्रुद्ध कौशिकी माता ने, खण्डित कर वहीं गिराई तब॥
फिर वह माता की मारों से, होकर बेहोश गिरा रण में।
यह देख देव सब बोल उठे, हर्षित हो होकर के मन में॥

❀ गाना ❀

माँ! कौन कह सकेगा, महिमा अहो तुम्हारी।
गुण गा सकेगी तेरा, कैसे जुबाँ हमारी॥
तुम हो जगत की माता, सब रिद्धि सिद्धि दाता।
है विश्व मोद पाता, कर वन्दना तुम्हारी॥
क्या गा सकेंगे माता! हम कीर्तिगान तेरी।
गाने में जिसके हारीं, खुद शारदा बिचारी॥

हम दीन थे दुखारी, थे दुःख हम पै भारी।
वे आज मिट गये हैं, हम हो गये सुखारी॥
जाना है मन में हमने, यह बात आज "ज्वाला"।
सब दुःख दूर होंगे, जब जग पड़े कराला॥

❀ ० ❀

देववृन्द जब हो गया, यह कह कर खामोश।
आया थोड़ी देर में, तब निशुम्भ को होश॥
आँखें खोली दैत्य ने, होकर जरा सचेत।
और लगा वह देखने, सम्मुख रण का खेत॥
दैत्यों पर मारें पड़ती थी, वे हा हा सभी पुकार रहे।
और मिलकर शक्ति समूह सभी, उनको रण में संहार रहे॥
कड़कड़ कर वज्र गरजता था, दानवदलिनी इन्द्राणी का।
और चमचम शूल चमकता था, दुर्गतिहरिणि रुद्राणी का॥
लपलप तलवार लपकती थी, कौमारी की उन दैत्यों पर।
और मार करारी पड़ती थी, इन हथियारों की दैत्यों पर॥
रण में शोणित की कीच मची, और लोथों पर लोथें लोटी।
दैत्यों का रक्तपान करके, रणचण्डी आज हुयी मोटी॥
मुर्दों की देहों के ऊपर, कितने कौवे मँडराते थे।
कुत्ते सियार और गीध सभी, आपस में रार मचाते थे॥
कोई मस्तक और पेट कोई, कोई नैनों को टोता था।
मानो पशुपक्षी में मिल कर, एक प्रीति-भोज सा होता था॥
देखी जब उस दैत्य ने, निज सेना की हार।
तभी प्रकट करने लगा, मन के यों उद्गार॥
"हा दैव! आज किन दोषों से, हम पर यह दुःख अशेष हुआ।
जो नाम बचा था दैत्यों का, वह आज सभी अवशेष हुआ॥

यह कैसी अग्निराशि धधकी, प्यारे दैत्यों के मण्डल में।
जिसमें सब तृण के सरिस जले, अब रहा न कोई भी दल में॥
यह देखो वीर बाँकुरों को, हैं पड़े युद्ध में हत होकर।
क्यों स्वामिभक्ति दिखलायी है, इन लोगों ने जीवन खोकर॥
हो धन्य तुम्हीं ऐ रणवीरों! करनी भी धन्य तुम्हारी है।
हे शूर! शूरता शूरों की, इस शूरपने पर वारी है॥
तुम सब तो मरकर अमर हुये, फल तुम्हें मिला मनचीता है।
पर हार हार करके निशुम्भ, किस भाग्य दोष से जीता है॥
मरने को तो मर जाऊँगा, मरने ही आया हूँ रण में।
पर नारी से निशुम्भ हत हो, है यही दुःख मेरे मन में॥
जो जन्मा वह क्या कभी बचा, हा! बली काल के तीरों से।
पर वही मौत तो सच्ची है, जो मिले युद्ध में वीरों से॥"

यह कहकर उस दुष्ट ने, भाला लिया उठाय।
और देवि जी की तरफ, दौड़ पड़ा झुँझलाय॥
पर पहुँच न पाया माता तक, रणवीर बांकुरा बलशाली।
थक करके फिर बेहोश हुआ, और मिटी देहभर की लाली॥
फिर जब उसको कुछ हो हुआ, तब वह फिर से हो गया खड़ा।
और भाले को ऊँचा करके, वह फिर माता पर दौड़ पड़ा॥
पर इधर देवि के धन्वा से, छूटा एक बाण करारा सा।
जाकर निशुम्भ के माथे पर, बैठा वह खरतर आरा सा॥
कट करके उसका शीश गिरा, नभ से मानो एक तारा सा।
और शीश हीन धड़ से छूटा, एक शोणित का फव्वारा सा॥
यह दृश्य देखकर देवों में, जयमां जयमां का घोष हुआ।
और डर डरकर दैत्यों का दल, बदहोश और खामोश हुआ॥

माता के हाथों से मरकर, जब रण में वीर निशुम्भ गिरा।
तो भग्नप्राय होकर मानों, दैत्यों का आशास्तम्भ गिरा॥
जब हाल सुना यह दैत्यों का, तब दैत्यराज भी डोल उठा।
और दुःख भाव भर कर मनमें, वह वीर विकल हो बोल उठा॥

* गाना *

जो सहारा था हमारा, वह सदा को खो गया।
हाय मेरा बन्धु प्यारा, आज रण में सो गया॥
गर्व था जिस पर हमें, जो दैत्य कुल का ताज था।
वह हमारा भाग्यतारा, अस्त अब तो हो गया॥
काल ने बेदर्द हो कर, युद्ध में लूटा उसे।
साथ में ऐश्वर्य सारा, दानवों को दो गया॥
राह में लूटा किसी ने, हाय! दिल का काफिला।
और कोई दर्दोगम, उजड़े दिलों में बो गया॥
कोशिशें बेकार हैं, तकदीर टल सकती नहीं।
हाय! क्या मैंने विचारा, और यह क्या हो गया॥

यह कह करके कह उठा, हो उदास मन शुम्भ।
"हा भाई रणबँकुरे! हा हा वीर निशुम्भ॥
पाऊँगा अब मैं कहाँ, भाई तेरा प्यार।
बिना तुम्हारे विश्व में, जीना है बेकार॥
हे भाई! जब तुम जूझ गये, और जूझा वंश हमारा भी।
तो निश्चय रण में जूझेगा, यह भाई शुम्भ तुम्हारा भी॥
मैं इसे जानता हूँ भाई! रण में मैं विजय न पाऊँगा।
पर जीकर यहाँ अकेला ही, क्या जीवन का फल पाऊँगा॥
जब भाई बन्धु न कोई है, और मिटा प्रेम का बन्धन है।
तो प्राणों से कुछ लाभ नहीं, यह जीवन सूखा जीवन है॥

इस नीरव निर्जन नगरी में, यह शुम्भ आज है पड़ा हुआ।
जैसे जनहीन मरुस्थल में, कोई पादप हो खड़ा हुआ॥
उस पादप के हरियाने से, क्या लाभ विश्व का होता है।
सच तो यह है वह जीकर भी, अपना ही गौरव खोता है॥
इससे अब यही इरादा है बाकी न और अरमान रहे।
चाहे न देह में प्रान रहे, पर निज गौरव का ध्यान रहे॥

यह कहकर ज्योंही उठा, सज्जित हो यह वीर।
आई तब उसकी प्रिया, होकर विकल अधीर॥
कहा शुम्भ ने "हे प्रिये! क्यों हो आज उदास।
आई हो कैसे यहाँ, दैत्यराज के पास"॥

यह सुनकर नारी बोल उठी, मानो वीणा झङ्कार उठी।
या विकल वियोगिनि सी होकर, पञ्चम में पिकी पुकार उठी॥
"हे स्वामी! मैं क्या सुनती हूँ, तुम आज युद्ध में जावोगे।
लड़कर एक अबला नारी से, क्या देव! अमर कहलावोगे॥
इतने अपमानों का होना, क्या प्राणेश्वर! पर्याप्त नहीं।
है मेरा हृदय पुकार रहा, अब भी जय होगी प्राप्त नहीं॥
जब जय ही स्वयं अनिश्चित है, तो रण करने का काम नहीं।
ठहरो, हे हृदयेश्वर! ठहरो, अब होगा यह संग्राम नहीं"॥

यह सुन करके कह उठा दैत्यराज वर वीर।
उचित न है तुमको प्रिये, यों होना दिलगीर॥
"तुम दैत्यराज की रानी हो, फिर क्यों यों व्याकुल होती हो।
क्यों यों विषाद से रोती हो, क्यों धैर्य चित्त का खोती हो॥
मेरे सब वीर विनष्ट हुये, जब एक एक कर संगर में।
तब मैं क्या यों ही पड़ा रहूँ, कायर सा हो करके घर में॥

है नहीं हार की चिन्ता कुछ, इससे न चित्त भय खाता है।
या तो जय करना आता है, या फिर मरना ही आता है" ॥
यह सुनकर बाला बोल उठी, मानो करुणा का स्रोत बहा।
"स्वामी! मुझे क्षमा करना, जो कुछ अनुचित हो आज रहा ॥
हे हृदयेश्वर! आशङ्का से, है चित्त हमारा डोल रहा।
नारी ही रण में जीतेगी, यह रह रहकर मन बोल रहा ॥
यह भीख माँगती है रानी, कुछ उसके पद का ध्यान करो।
प्राणेश्वर! पैरों पड़ती हूँ, मुझको सुहाग का दान करो" ॥

यह कहकर वह गिर पड़ी, चरणों में अकुलाय।
प्रेम-मग्न हो शुम्भ ने, उसको लिया उठाय ॥
उत्तरीय से पोंछकर, उसके दोनों नैन।
दैत्यराज कहने लगा, समझाकर ये बैन ॥

"प्यारी! यों रो रोकर मन में, व्याकुल मत मुझे बनाओ तुम।
मैं विजय प्राप्त करके आऊँ, ऐसा ही आज मनाओ तुम ॥
तेरी इच्छाओं के बल से, मेरा न बाल बाँका होगा।
और रण में मेरे कामों से, लज्जित न दूध माँ का होगा ॥
यह कह करके वह वीर गया, रण करने उसको समझा कर।
और उधर त्रिया वह बोल उठी, मनमें व्याकुल हो दुख पाकर ॥
"हे जगत्पिता! हे जगनायक! अबला यह आज दुखारी है।
पैरों पड़ तुम्हें सुनाती हूँ, जो विनती देव हमारी है ॥
करुणा करके हे देव! करो, मेरे सुहाग की रखवाली।
मेरा सर्वस्व मिटे चाहे, पर न माथे की लाली" ॥

* गाना *

दयामय ! दया करो करतार ।
तुम्हीं से होगा बेड़ा पार ।। दयामय० ।।
पड़ करके सङ्कट में अबला तुमको रही पुकार ।
होकर सदय दिखा दो अपनी करुणा करुणागार ।।
अशरण शरण दीन प्रतिपालक तुम हो परम उदार ।
करुणा कर क्या मुझ दुखिया को दोगे हाय विसार ।।
नैया पड़ी हुई है मेरी, आज प्रभो ! मँझधार ।
चाहे उसे डुबा दो चाहे कर दो बेड़ा पार ।।
दयामय ! दया करो करतार ।

—•—

इधर त्रिया यों दुःख से, रो रो हुयी अधीर ।
और उधर रण के लिये, सजा दैत्य वर वीर ।।
चला पहन कर शुम्भ वह, वीरोचित पोशाक ।
उड़ा प्रभञ्जन वेग से, मानो गिरि मैनाक ।।
जो दृश्य अभी कुछ दिन पहले, देखा था सब नर नारी ने ।
अब वही दृश्य फिर दिखलाया, रणशूर शुम्भ बलधारी ने ।।
फिर से धन्वा का घोष हुआ, और फिर से रण निर्घोष हुआ ।
फिर से जड़ जङ्गम डोल उठे, वह दानव जभी सरोष हुआ ।।
फिर से उल्का का पात हुआ, और फिर से झंझावत हुआ ।
देवों का दुःख बढ़ाने को, फिर से पैदा उत्पात हुआ ।।
माता से रण में भिड़ने को, इस तरह शुम्भ बलवान चला ।
मानो अपार आँधी छूटी, या मानो मेघ महान चला ।।
उसके प्रचण्ड आघातों से, कितने ही तरु समूह टूटे ।
और काँप उठे जड़ जीव सभी, उनके नितान्त दाढ़स छूटे ।।

पृथ्वी पर करता हुआ, एक बड़ा भूचाल।
पहुँचा माँ के पास में, शुम्भ वीर विकराल॥
देखि उसने सिंह पर, माँ की मूर्ति विशाल।
सभी शक्तियाँ थीं खड़ी, सन्मुख हो नतभाल॥
उस समय शान्ति में सनी हुई, माता की मूर्ति मनोहर थी।
सब शोभा उस पर वारी थी, ऐसी वह शुचि शोभाकर थी॥
सिर पर था मन्जु किरीट लसा, कानों में सोह रहे कुण्डल।
मानों मेघों की माला में, हो चमक रही चपला चञ्चल॥
रत्नों की राशि चमकती थी, माँ के तन के सब भागों में।
ज्यों शरद सुहावन आने पर, खिल उठें फूल वनबागों में॥
कटि में किंकिणि थी बाज रही, पग में नूपुर झङ्कार रहे।
मानो वसन्त में फूलों पर, भौंरों के दल गुन्जार रहे॥
पैरों की प्रभा देख करके, पद्मों का दल मुरझाता था।
और मुखमण्डल विलोक माँ का, शशि भी फीका पड़ जाता था॥

देख देख कर देवी की, मूर्ति मन्जु अभिवान।
मुग्ध हुआ कुछ देर को, शुम्भ वीर बलवान॥
फिर जब थोड़ी देर में, हुआ उसे कुछ चेत।
तब वह बोला बैन ये, माँ से रोष समेत॥

"ओ नारी! भला बता मुझको, क्या तूही वह सुकुमारी है।
पड़ करके जिसकी माया में, सेना सब कटी हमारी है॥
यह रूप देख करके तेरा, दैत्यों ने मोह किया होगा।
इसलिये मारने में तेरे, भरपूर न ध्यान दिया होगा॥
मैंने नाहक सेना भेजी, इसमें मेरा ही अपयश था।
रण में तुझ पर जय पाने को, मैं शुम्भ अकेला ही बस था॥

यह वेश और यह काम तेरा, ओ नारी ! तू न लजाती है।
नारी होकर नरवीरों से, लड़ने में शर्म न आती है ॥
कहते हैं कुलबालाओं का, लज्जा ही भूषण है भारी।
पर तूने कहाँ बहा दी है, वह लज्जा अपनी सुकुमारी ॥
नारी क्या कभी लड़ाई में, पुरुषों के सन्मुख होती है।
तेरा यह काम देख करके, लज्जा भी लज्जित होती है" ॥

यह सुनकर माँ ने कहा, "ओ दानव नादान।
नारी के बल का तुझे हुआ न अब भी ज्ञान ॥

जड़ जङ्गम उपजाने वाली, वह आदि शक्ति है नारी ही।
और सब को विनसाने वाली, संहार शक्ति है नारी ही ॥
जिसमें भण्डार शक्ति का है, उस पर क्या नर जय पायेगा।
गर दीपक पर पतङ्ग जूझे, तो वह खुद ही जल जायेगा ॥
सच कहते हो तुम नारी का, लज्जा ही भूषण है भारी।
हाँ शोभा कभी न पाती है, दुनियाँ में निर्लज्जा नारी ॥
पर लज्जा क्या लज्जित होगी, जब लज्जा ही लुटने को है।
और डरपेगी क्या सुकुमारी, जब वह खुद मर मिटने को है ॥
जब तुम आकर एक नारी की, लज्जा हरते हो बलधारी।
तो फिर बाहर रण करने की, लज्जा क्या रक्खे सुकुमारी ॥

❀ गाना ❀

सिखलाते हो क्या यह नारी को, वह सोती रहे बेहोश रहे।
तुम तो उसका अपमान करो, वह मौन रहे खामोश रहे ॥
उसकी इज्जत उसकी अस्मत, लुट जावे सभी उसकी किस्मत।
इस पर भी वह चुपचाप सहे, और ठंडा उसका जोश रहे ॥

कुचलें सब पैरों से उसको, और लाज विहीन करें उसको।
फिर भी क्या संभव है ऐसा, उसके दिल में सन्तोष रहे॥
वह क्यों न सभी बंधन तोड़े, और क्यों न हया से मुँह मोड़े।
जब लाज लुटे उसकी 'ज्वाला' तब क्या फिर उसको तोष रहे॥

यह सुनकर कहने लगा, वह दानव बलवान।
"कहती है क्यों बैन ये, ओ नारी नादान॥
मैं सभी जानता हूँ बाले! जैसी तुम होती हो नारी।
छूते ही मुरझाने वाली, तुम छुई मुई हो सुकुमारी॥
रण में रणवीरों से लड़ना, तुम अबलाओं का काम नहीं।
जो कलित कुसुम सा कोमल है, वह करता है संग्राम नहीं॥
जिस हेतु तुम्हारा जन्म हुआ, जाओ वह अपना काम करो।
अन्तःपुर में रहने वाली, अन्तःपुर में आराम करो॥
बाले! तुम लज्जाहीन न हो, और इसमें तुम्हें हुलास न हो।
कुल शील धर्म और लज्जा का, देखो यों सत्यानाश न हो"॥

यह कह कर जब हो गया, मौन शुम्भ वरवीर।
तब माता कहने लगीं, ऐसी गिर गम्भीर॥
"सच कहते हो तुम वीर बली, कोमलता दूषण है भारी।
कोमलता ही में नष्ट हुयी, हा नारि देश की फुलवारी॥
नारी यदि पर्दा करे उचित, तो पर्दा परम मनोहर है।
वह सरससशील का सुस्थल है, और लज्जा का सुन्दर घर है॥
पर्दा तब तक ही अच्छा है, जब तक परदे की लाज रहे।
गाना भी तभी सुहाता है, जब सुख का पूरा साज रहे॥
पर जब कोई घटना आवे, परदे की लज्जा जाने की।
तो मन में फिक्र करे नारी, हरदम ही उसे बचाने की॥

गर पड़ी रहेंगी पर्दे में, इन मौकों पर भी सुकुमारी।
तो नित प्रति बढ़ती जावेगी, उनके दुःखों की अँधियारी॥
अबलाओं के वृन्द का, बीत चुका वह काल।
अब तो उसका हो रहा, आज और ही हाल॥
देखो अब ललना मण्डल का, पर्दा सब हटता जाता है
और क्रमक्रम से उन लोगों का, सङ्कट सब कटता जाता है।
उनकी निद्रा अब दूर हुयी, देखो वे हैं सब जगी हुयी
और कर्मभूमि में आ करके, हैं निज कर्मों में लगी हुयी॥
इतनी सदियों तक सोने पर, यह मर्म आज पहिचाना है
जो सोया दुनियाँ में आकर, उसका फिर नहीं ठिकाना है
दुखमय दुर्दिन के आने पर, कोई भी काम न आते हैं
अपने ही हाथों से अपने, सङ्कट सब टाले जाते हैं
अपना सम्मान बचाने को, लड़ जाने में लज्जा कैसी
और जब सङ्कट घिर आये हों, तो फिर मन में शङ्का कैसी
जब किसी आर्य सुकुमारी की, इज्जत पर बट्टा आता है
तो देखो इसी तरह उसका, आयुद्ध ऊँचा उठ जाता है"
यह कह कर माँ ने किया, धन्वा का टंकोर।
सिंहनाद भी हो उठा, घन--गर्जन सा घोर॥
अट्टहास करने लगीं, रणचण्डी विकराल।
काँपे उठे जड़जीव सब, हो होकर बेहाल॥
यह सुनकर कहने लगा, माँ से दानव-राज।
"अहङ्कार क्यों हो रहा, कहो तुम्हें क्यों आज॥
तुममें क्या ऐसी हिम्मत है, तुममें क्या ऐसा बल आ
जिससे यों नर रणवीरों से, तुमने बाले! रण ठहराय

शक्तियाँ तुम्हें जो घेरे हैं, तुम इनसे ही बलशाली हो।
इनके ही बल से जय पाकर, तुम जयी कहाने वाली हो॥
इन सबल शक्तियों के दल का, बाले! जो तुम्हें न बल होता।
तो निश्चय ही युद्ध स्थल में, दैत्यों का वृन्द जयी होता"॥
यह सुनकर माता बोल उठीं, "क्यों तेरा मन चकराया है।
यह शक्ति तुझे जो दिखती हैं, वह सब मेरी ही माया है॥
मैं ही तो जग का कारण हूँ, मुझसे ही सब तन पाते हैं।
जड़ जङ्गम हैं जितने जग के, सब मेरा अंश दिखाते हैं॥
जो फँसा हुआ है माया में, मैं उसके लिये पहेली हूँ।
अब कहाँ शक्तियों का दल है, मैं ही अब यहाँ अकेली हूँ॥
मैं कहीं भक्ति और श्रद्धा हूँ, और कहीं स्नेह आदरमय हूँ।
जो कुछ है मेरी लीला है, दुनियाँ में बस मैं ही मैं हूँ"॥

* गाना *

जिस ठौर आँख ठहरे, उस ठौर मैं ही मैं हूँ।
सब लोक सब दिशा में, सब ओर मैं ही मैं हूँ॥
रविचन्द्र मण्डलों में, जड़ जीव के दलों में।
ज्यों प्राण हो तनों में, उस ठौर मैं ही मैं हूँ॥
हर फूल पत्तियों में, हर शाख टहनियों में।
पुष्पों को गन्ध के सम, सब ठौर मैं ही मैं हूँ॥
जो देखते हो सारा, दुनियाँ का यह नजारा।
वह खेल है हमारा, सब ओर मैं ही मैं हूँ॥

सभी शक्तियाँ हो गयी, जब माता में लीन।
तब सतेज हो खिल उठी, उनका रूप नवीन॥
यह लख कर शुम्भ वह, मन में हुआ सरोष।
फिर घन-गर्जन सा हुआ, उसका रण निर्घोष॥

फिर धन्वा उतरा कन्धे से, और उसकी एक टंकोर हुई।
और वर्षा में जलधारों सी, बाणों की वर्षा घोर हुई॥
उन बाणों की बौछारों में, देवी यों अन्तर्ध्यान हुई।
मानो वर्षा के आने पर, रवि छटा घटा में म्लान हुई॥
यह देख दयामयि माता ने, हाथों में अपना चाप लिया।
और बाण चलाकर कितने ही, शरजाल शुम्भ का काट दिया॥
फिर उनके दुर्धर धन्वा से, सनसन का इतने शर छूटे।
जिससे उस दानव राजा के, रथ चाप आदि सत्वर टूटे॥
यह देख शुम्भ ने गुस्से से, माता पर कठिन शूल छोड़ा।
पर माँ ने भाले के द्वारा, उसको मारग ही में तोड़ा॥
तब तोमर चला तीव्र गति से, मन में जब क्रोधित शूर हुआ।
पर छूटने के पहले ही वह, माँ के अस्त्रों से चूर हुआ॥

एक एक कर कट गये, जब उसके हथियार।
तब उस दानवराज ने, ऊँची की तलवार॥

इस ओर दैत्य की खड्ग तनी, उस ओर खड्ग माँ की निकली।
चम चमकर दोनों चमक उठी, मानो घन में चमकी बिजली॥
इतने में माँ का वार हुआ, और गिरा खड्ग खल का कटकर।
मानो टूटा नभमण्डल से, तारा कोई खण्डित होकर॥
इस पर फिर गदा उठी उसकी, पर वह भी गिरी चूर होकर।
तब उसने मुष्टि प्रहार किया, माता पर सब विवेक खोकर॥
इस पर क्रोधित हो माता ने, उसको एक दिया तमाचा जब।
तब होकर वह बेहोश गिरा, हिल उठा अङ्ग का ढांचा सब॥
कुछ देर बाद जब होश हुआ, तब वह दानव माँ पर धाया।
मानो वृक्षों को ढाने को, आँधी का रूप प्रबल आया॥

माता को लेकर उड़ा, वह अम्बर की ओर।
और वहाँ होने लगा, मल्लयुद्ध घनघोर॥
उस समय दिखा ऐसा मानों, घन घन से टक्कर खाते हों।
या बड़े बड़े दो ग्रह मिलकर, चक्कर सब ओर लगाते हों॥
उस मल्लयुद्ध के होने से, जग भर में शङ्का व्याप गई।
अम्बर पाताल सभी काँपे, और सचराचर महि काँप गई॥
सुरवृन्द कभी खुश होते थे, माँ की जय की आशाओं से।
और कभी दुखित हो जाते थे वे कितने ही शङ्काओं से॥
पर इसी बीच में माता ने, उस खल को वहीं पछाड़ दिया।
और देवों के शङ्का रूपी, तरु को जड़ सहित उखाड़ दिया॥
फूटे सब अङ्ग दुरात्मा के और हो करके वह चाक गिरा।
मानों निज पंख कटा करके, नभमण्डल से मैनाक गिरा॥
उस दानव के मर जाने से, देवों का सब सन्ताप मिटा।
अन्याय और अविवेक मिटा, पृथ्वी का सारा पाप मिटा॥
सुख का फिर पारावार बहा, और दूर सबों का शोक हुआ।
फिर से सुख श्री समृद्धि छाई, और फिर से पुण्यालोक हुआ॥
डफ घण्ट चारु बजा करके, और सितपुष्प की वर्षा कर।
सब देव बैन ये बोल उठे, मन में हर्षित हो सुख पाकर॥

❀ गाना ❀

जय देवि जय दयामयि, जय क्लेश हरने वाली।
सुख शान्ती और मङ्गल, भरपूर भरने वाली॥
मातेश्वरी तुम्हीं से, यह विश्व सृष्टि पाता।
और अन्त में तुम्हीं हो, संहार करने वाली॥

देवी ! तुम्हीं फँसाती, माया में मानवों को ।
फिर भी तुम्हीं हो माता, सब मोह हरनेवाली ।।
घिरते है सङ्कटों में, जब भक्तजन तुम्हारे ।
हो बस तुम्हीं दयामयि, तब पार करने वाली ।।
अब जब भविष्य में माँ, हम पर विपत्ति आवें ।
तब दुःख दूर करना, दुःख दूर करने वाली ।।

❀ ० ❀

यह सुनकर माँ ने कहा, मैं प्रसन्न हूँ आज ।
जब तुम चाहोगे तभी, पूर्ण करूँगी काज ।।
जब जब देवों तुम लोगों पर, संकट के घन घहरावेंगे ।
तब तब मैं दौड़ी आऊँगी, और सङ्कट सब टल जावेंगे ।।
आगे जब दोनों दानव ये, प्रगटेंगे पृथ्वी पर आकर ।
तब मैं ही इनको मारूँगी, ले करके जन्म नन्द के घर ।।
फिर रक्तपान कर दैत्यों का, दाड़िम से दशन बनाऊँगी ।
और रक्तदन्तिका कहलाकर, सब का दुख मेट बहाऊँगी ।।
फिर बिना वृष्टि के जब आगे, व्याकुल यह सकल सृष्टि होगी ।
तब शत नेत्रों वाली मेरी, दुनिया पर दया दृष्टि होगी ।।
उस समय सभी भूमण्डल में, मैं नाम "शताक्षी" पाऊँगी ।
और सबका पालन करने से, मैं "शाकम्भरी" कहाऊँगी ।।
फिर मेरे ही इन हाथों से, जब दुर्ग असुर का वध होगा ।
तब भीतिभाव भरने वाला, नव नाम मेरा "दुर्गा" होगा ।।
जब जब खल तुम्हें सतावेंगे, तब तब संहार करूँगी मैं ।
भक्तों का संकट हरने को, नित नाना रूप धरूँगी मैं ।।
पढ़े सुनेगा भक्त जो, मेरा चारु-चरित्र ।
उसके दिल के सर्वदा, होंगे भाव पवित्र ।।

मेरी इस पावन गाथा को, जो भक्त भक्ति से गावेंगे ।
उनको नित नया हर्ष होगा, सङ्कट सारे टल जावेंगे ।।
सुख शान्ति पूर्ण वे सब होंगे, और कष्ट न कोई पावेंगे ।
दारिद्र दूर होगा उनका, और शत्रु सभी दब जावेंगे ।।
यह मेरी कथा मनोहारी, त्रयताप मिटाने वाली है ।
मन्जुल मङ्गल करने वाली, सब विघ्न हटाने वाली है ।।
जिस घर में और जिस अवसर में, यह कथा सुनाई जावेगी ।
उस जगह सभी मङ्गल होगा, आपत्ति आदि टल जावेगी ।।
प्रति वर्ष शरद के आने पर, जब मेरी पूजा होती है ।
उस समय इसे जो सुनता है, उसकी मति उज्जवल होती है ।।
जब कष्ट शरीरी पाते हैं, और ग्रह के चक्कर आते हैं ।
तब जो जन इसको पढ़ें सुनें, उनके दुख शम हो जाते हैं" ।।
यह कहकर माता हुयी, तत्क्षण अन्तर्ध्यान ।
और देव सब कह उठे, "जय करुणा की खान" ।।
तब मेधाऋषि ने कहा, "सुनो सुरथ नृपराज ।
माया में तुम इन्हीं की, फँसे हुये हो आज ।।
आओ पहले हे महामते ! सब पूजा का सामान करो ।
और फिर इन माँ जगदम्बा का, तुम सच्चे जी से ध्यान करो ।।
उनकी अनुकम्पा से राजन् ! अज्ञान सभी हट जावेगा ।
जिस मोह जाल में जकड़े हो, वह जाल सभी कट जावेगा ।।
यह सुनकर राजा ने जाकर, पहले देवी का ध्यान किया ।
और फिर प्रसन्न कर माता को, मन का चाहा वरदान लिया ।
माता की करुणा से उनके, परिशान्त सभी उत्पात हुये ।
सावर्ण सूर्य के सुत वे ही, अष्टममनु फिर विख्यात हुये ।।

जब मोह जाल सब काट दिया, माता ने उनका करुणा कर।
तब सुरथराज यों बोल उठे, हर्षित हो दिव्यज्ञान पाकर॥

❀ गाना ❀

हाय ! मैं कैसा भूला था।
मेरा कौन यहाँ था जग में जिस पर फूला था।
दुनियाँ यह धोखे की टट्टी, भ्रम का झूला था॥
मैं जिसकी माया में पड़कर हा ! यों भूला था।
वह सब मिट जाने वाला एक क्षुद्र बबूला था॥

—o—

हुआ शेष हे सज्जनों ! देवी का आख्यान।
अब कुछ कवि की भी कथा, सुनिये धरकर ध्यान॥
है युक्त प्रान्त में एक जिला, छोटा 'उन्नाव' नाम वाला।
जिसमें है एक ग्राम प्यारा, 'बहुराजमऊ' संज्ञक वाला॥
उस परम मनोहर मौजे में, जो है निवास करने आला।
इस चारु चरित का लेखक है, वह कवियों का किंकर 'ज्वाला'॥
देवी ही की अनुकम्पा से, उसने यह सब व्याख्यान किया।
देवी के दिव्य कथानक का, भाषा में मंजुल गान किया॥
आशा है जो सज्जन जन हैं, वे सब इसको स्वीकारेंगे।
और बालक उसे जान करके, सब उसका दोष बिसारेंगे॥
इस गाथा की शिक्षाओं ने, उसमें रुचि का संसार किया।
जिससे यह कार्य कठिनतर भी, करना उसने स्वीकार किया॥
सामर्थ्य भला कब थी उसमें, माँ के गुण गाने पाता।
माँ की यदि कृपा न होती तो, यह चरित न कभी लिखा जाता॥

पहले था किस भांति का, प्यारा भारत देश।
किन्तु आज है हो रहा, कैसा उसका वेश॥
पहले का भारत कैसा था, और अब का कैसा भारत है।
वह सुख समृद्धि अवि शाली था, यह दीन दुखी है आरत है॥
माँ बहिनें पहले की कैसी, विद्याबल वैभव वाली थीं।
अबला कहलाती थीं लेकिन, बल से वे कभी न खाली थीं॥
पहले इस प्यारे भारत में, क्या ज्ञान भरा था नारी में।
कैसी हिम्मत, कैसी ताकत, क्या जुर्रत थी सुकुमारी में॥
पर्दे की प्रथा न थी उनमें, वे कर्मभूमि में आती थीं।
जब जब ऊपर दुख आते थे, तब तब वे उन्हें हटाती थीं॥
इससे पहले के भारत का, सुरगण तक वन्दन करते थे।
भूतल को सभी देश उसका हर दम अभिनन्दन करते थे॥
पर अब कैसा हो रहा, वही स्वर्ग सा देश।
हा हा पहले का विभव, बचा नहीं कुछ शेष॥
माँ बहिनों, अपने गौरव का, कुछ ध्यान हृदय में लाओ तुम।
आओ अपने इस भारत को, पहले सा सुखी बनाओ तुम॥
अब काम नहीं है पर्दे का, मिलकर सब इसको दूर करो।
गढ़ है जो महामूर्खता का, लड़ लड़ कर उसको चूर करो॥
आदर्श आपके आगे जो, माँ दुर्गा ने दिखलाया है।
और जिसको कवि की वाणी ने, यों भक्तिभाव से गाया है॥
आओ उस पर सब ध्यान करो, और मिलकर ऐसा काम करो।
दुर्गा की तुम कन्यायें हो, दुर्गा सा अपना नाम करो॥
तुम चाहो तो आ सकता है, फिर से वह पहले का भारत।
वैसा ही बल वैभव-वाला, वैसा ही यशवाला भारत॥

हे परमपिता ! फिर पैदा कर, भारत में वैसी ही नारी ।
यह देश समुन्नत होगा जब, जग जायँगी सब सुकुमारी ॥

❀ गाना ❀

दीनबन्धु सुन लो, अभिलाष यह हमारी ।
भारत में फिर से, आवें वैसी महान नारी ॥
दुख दूर देश के हों, सब ओर शान्ति छावे ।
जग जाय सोनेवालों, कहिने सभी हमारी ॥
अबला बनें यहाँ की बल बुद्धि ज्ञान वाली ।
फूले फले हमेशा, इस देश की कियारी ॥
कहता यही है "ज्वाला" सेवक तेरे चरण का ।
दुर्गा सी हों दयामय ! दुर्गा को सब दुलारी ॥

—o—
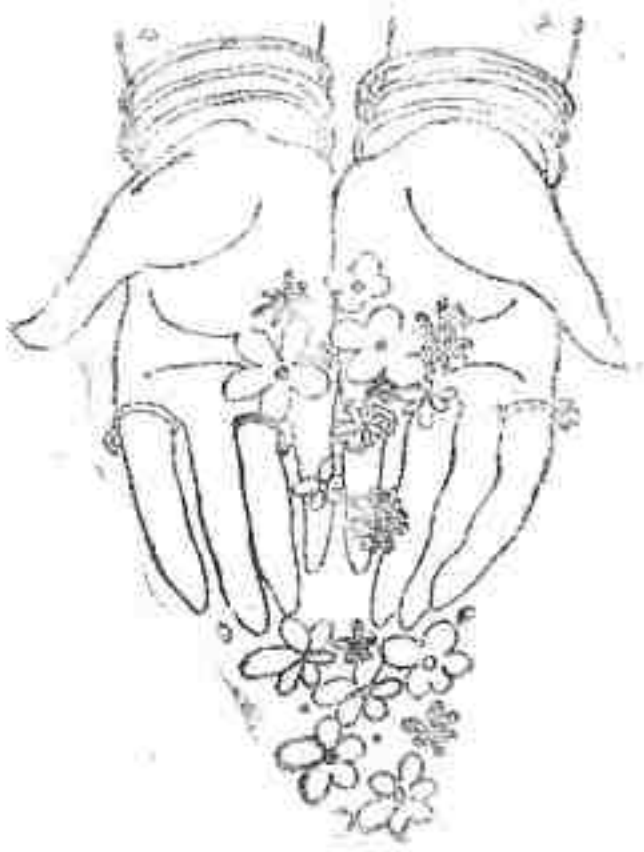
—❀ इति ❀—